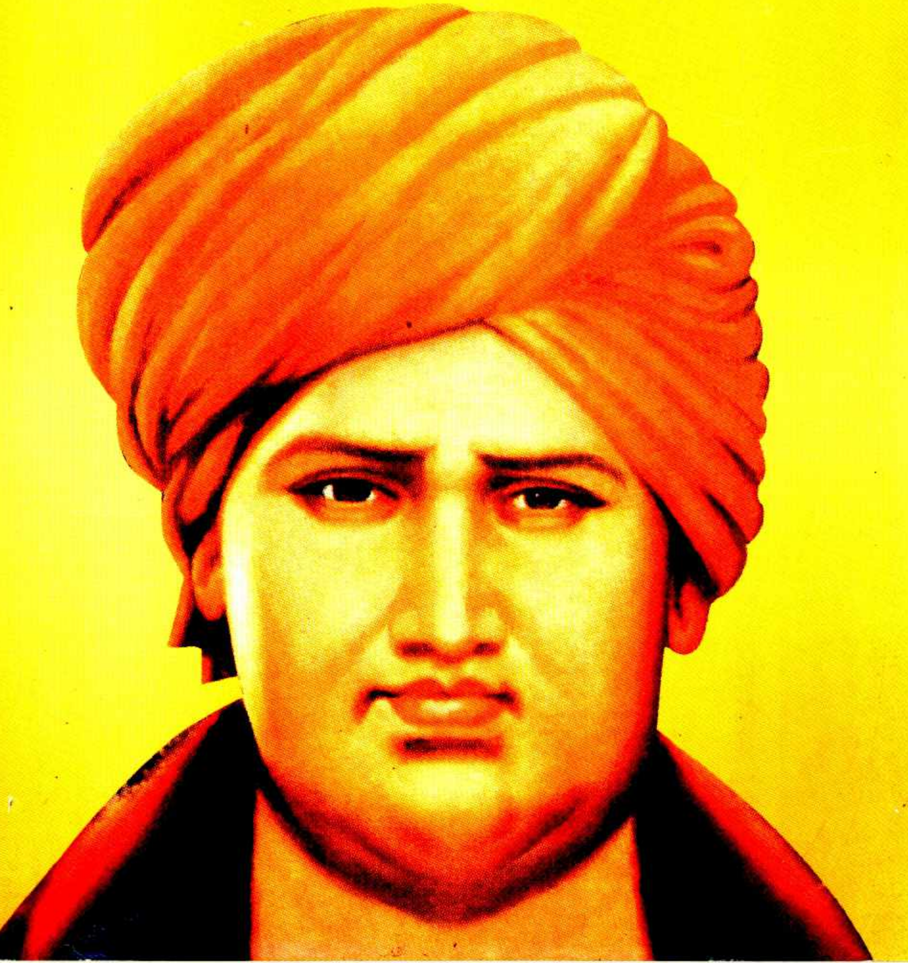
ओ३म्

राष्ट्रपितामह
महर्षि दयानन्द

● संक्षिप्त जीवनी ● संक्षिप्त सत्यार्थ प्रकाश ● कार्य एवं प्रेरणा

पं हरिदेव आर्य



ओ३म्

हमारे पू० पिता जी पं० हरिदेव आर्य

संसार में बहुत कम व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्हे उनके आदर्शों व कार्यों से जाना जाता है, जो 'कर्मयोगी' कहाते हैं। कुछ ऐसे ही स्मरणीय थे हमारे पूज्य पिताजी श्री हरिदेव आर्य। वह वास्तव में वैदिक धर्म और ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त, परम श्रद्धालु और वैदिक सिद्धान्तों के आदर्श पुजारी थे तथा आर्य समाज की उन्नति और ऋषि प्रमाणित वैदिक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ तन, मन व धन से सदैव तत्पर रहते थे।

वह केवल हमारे पिता ही नहीं थे अपितु मित्र एवम् पथ प्रदर्शक भी थे। अच्छे संस्कार देकर जहाँ उन्होंने अपने परिवार को बनाया वहाँ आर्य कुमार/कुमारी सभा के माध्यम से सैंकड़ों युवको युवतियों के जीवन को जगमगाने का कार्य भी किया। पिताजी पूर्ण स्वाभिमानी थे, उन्होंने कभी असत्य के साथ समझौता नहीं किया। इस कारण जीवन में कई कष्ट आये, लोग रुष्ट हुए लेकिन उन्होंने सब हंस कर सहा जैसे कि हर महापुरुष के जीवन में संसारी लोग कठिनाइयाँ खड़ी किया ही करते हैं। शायद यही उनकी सत्यता व धैर्य की परीक्षा होती है।

वह वास्तव में एक दिव्य आत्मा थे, ईर्ष्या व वैर से दूर समाज हितैषी थे, सबको अपना परिवार समझते थे व उनके लिये प्यार व आर्शीवाद का भाव रखते थे। प्रकृति व पर्यावरण से प्यार था, हंसमुख थे, बच्चों में बच्चे बन जाते और अपनी धुन के पक्के थे। वह कहते थे दिया हुआ दान, की हुई सेवा, किया हुआ पुरुषार्थ व सच्ची प्रार्थना कभी निष्फल नहीं होती।

उन्होंने धर्म व कर्तव्य पालन के साथ-साथ व्यापार के मार्ग पर भी हमें चलना सिखाया जो उनके आशीर्वाद से प्रगति की ओर बढ़ रहा है। आज पू. पिताजी हमारे बीच में नहीं है लेकिन उनकी आदर्श यादें हमारे दिलों में हमेशा विद्यमान हैं जो संकट की हर घड़ी में प्रकाशपुन्ज बनकर हमारा मार्ग प्रशस्त करती रहेंगी।

आज उनकी पहली पुण्य तिथि (24.12.2007) पर हम सभी पारिवारिक जन उन्हें स्मरण करते हुए उनके बताये रास्ते पर चलने का संकल्प करते हैं। अमर शहीद पं० लेखराम की पँक्तियाँ "तकरीर व तहरीर (लेखन) का काम कभी बन्द नही होना चाहिये" का अनुसरण करते हुए उन्होंने कई पुस्तकों का लेखन व सम्पादन किया। यह उन्हीं की बनाई माला का मनका है जिसे आप सबको भेंट करते हुए हम आनन्द का अनुभव करते हैं।

सुशीला आर्या	यशोवीर-सुदेशवीर	मदालसा-डा0 जवाहरलाल
(धर्मपत्नी)	धर्मवीर-अर्चनावीर	सुमेधा-विनोद कुमार
	(पुत्र-पुत्रवधु)	(पुत्री-दामाद)

निवास : 224, सूर्य निकेतन, विकास मार्ग, दिल्ली-110092,
दूरभाष : 011-22370254, 9312223472

ओ३म्

राष्ट्रपितामह महर्षि दयानन्द

— पं० हरिदेव आर्य,

मूल्य : 25 रुपये सहयोग राशि
द्वितीय संस्करण : 2007
ISBN 81-85269-49-1-

प्रकाशक : मधुर-प्रकाशन, 2804, गली आर्यसमाज, बाजार सीताराम, दिल्ली-6
मुद्रक : तिलक प्रिंटिंग प्रेस, 2046, बाजार सीताराम, दिल्ली-6

ओ३म्

राष्ट्रपितामह
महर्षि दयानन्द

संक्षिप्त जीवनी

संक्षिप्त सत्यार्थप्रकाश

कार्य एवं प्रेरणा

माता सुशीला व हरिदेव आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट
224, सूर्य निकेतन, दिल्ली–110092

भूमिका

मुझे गत् कई वर्षों से आर्यसमाज, आर्य कुमार सभा, प्रान्तीय तथा भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद्, आर्य प्रतिनिधि सभा, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा आदि के कार्यों तथा विशेष कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेने, कार्य करने के सौभाग्य प्राप्त होते रहे हैं। हिन्दी रक्षा आन्दोलन, गोरक्षा आन्दोलन, स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान अर्द्धशताब्दी, आर्यसमाज स्थापना शताब्दी के विशेष कार्यक्रमों के अवसरों पर, बलिदानी वीरों के पुण्य दिवसों के विशेष कार्यक्रमों, आर्य महासम्मेलनों, वैदिक प्रचार-प्रसार के विशेष कार्यक्रमों, आर्य समाजों के वार्षिकोत्सवों के शुभावसरों पर महर्षि दयानन्द जी के अमर जीवन की प्रेरणाप्रद झांकियों का दिग्दर्शन कराने तथा गुरुवर के **सत्यार्थप्रकाश** आदि अमर ग्रन्थों के सिद्धान्तामृत का पान कराने के अनेक अवसर मिलते रहे हैं, कई भागों में पुस्तिकाओं के रूप में भी वितरण के शुभावसर प्राप्त होते रहे हैं जिनका कुमार-कुमारियों, युवक-युवतियों, स्त्री-पुरुष भरपूर लाभ उठाते रहे हैं। मान्य आर्य विद्वानों, आर्य सज्जनों, आर्य देवियों ने इनकी भरपूर सराहना की है।

अब परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा से **राष्ट्र पितामह महर्षि दयानन्द** के रूप में प्रस्तुत पुस्तक पूर्ण कर पाया हूँ ताकि मेरे पुनीत **वैदिक धर्म** तथा **भारत राष्ट्र** के भावी कर्णधार कुमार-कुमारियों, युवक-युवतियों, धर्म प्रेमी, बन्धुओं, स्त्री-पुरुषों के हृदयों में ईश्वर विश्वास, सत्य-निष्ठा, सदाचारण, निर्भयता, निस्वार्थता, समाज सेवा, सच्चा राष्ट्र प्रेम, आर्य-भाषा, राष्ट्र-भाषा हिन्दी, आर्य-संस्कृति, गो आदि से प्रेम, मानवमात्र से प्रेम, महर्षि तथा उनके पुनीत वैदिक धर्म तथा राष्ट्र के प्रति श्रद्धा, उत्साह एवं बलिदान की भावना, स्फूर्ति आदि उत्कृष्ट गुणों का संचार हो तथा वे स्वाध्याय में प्रवृत्तिशील हो सकें।

प्रस्तुत पुस्तक महर्षि दयानन्द जी के मन्तव्यों का दिग्दर्शनमात्र है, उनको समझने तथा उनके आदेशानुसार कार्य करने के लिये उनकी अमर जीवनी, सत्यार्थ प्रकाश, उपदेशामृत आदि का श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय करके ही उनके उपदेशों, आदेशों को अपने जीवन का अंग बनाकर, उनके अनुसार चलकर ही अपना तथा अन्यों का हित साध सकें, ऐसी मेरी अभिलाषा है।

देश बड़ी कठिन परिस्थितियों से गुजर रहा है। इसलिये युग निर्माता, राष्ट्रपितामह, जगत् गुरु महर्षि दयानन्द महाराज के राष्ट्र की स्वतन्त्रता-प्राप्ति तथा उसकी रक्षा, आपसी प्रेम, राष्ट्रीय भाषा हिन्दी द्वारा भावात्मक एकता, गो आदि द्वारा राष्ट्रीय, आर्थिक विकास सम्बन्धी कुछ राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक कर्त्तव्यों–प्रेरक उपदेशों, कर्त्तव्य-कर्म करने के कुछ प्रेरक आदेशों का समावेश भी इस पुस्तक में कर दिया है, ताकि धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक नेता, केन्द्रीय-प्रान्तीय सरकारों, स्थानीय निकायों के कर्णधार तथा राज्याधिकारी आदि कर्त्तव्य ज्ञान प्राप्त कर अपना कर्त्तव्य कर सकें और पूरा देश एक जुट होकर देश तथा देशवासियों को एक करके देश के शत्रुओं को देश के बाहर खदेड़ सकें और देशवासियों को सच्चा देशभक्त बना सकें तथा हमारा प्यारा भारत देश चहुँमुखी उन्नति करता हुआ संसार का **प्राचीन गुरुपद** प्राप्त कर सके।

– **आचार्य हरिदेव आर्य,**
एम.ए. विद्यावाचस्पति

राष्ट्रपितामह : महर्षि दयानन्द

संक्षिप्त जीवनी

प्रथम भाग

जब इस युग के महानतम् सुधारक, सुक्रान्तकारी, वेद-शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित, अत्यन्त दूरदर्शी, प्रभु के अनन्य उपासक, आर्य समाज के प्रवर्त्तक, युग-प्रवर्त्तक, जगदोद्धारक परमपूज्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज का प्रादुर्भाव हुआ, उस समय देश में बड़ा भारी विप्लव हो रहा था। राष्ट्रीय शक्ति छिन्न-भिन्न थी। मुगल राज्य का सितारा डूब चुका था। राजपूताने की वीरता निराश होकर अपने ही मरुस्थलों एवम् पहाड़ियों में सुप्तावस्था में पड़ी थी। पेशवा और सिंधिया-शक्ति की स्वतन्त्रता का तारा डूब-सा चुका था। नेपाली सैनिक-शक्ति युद्ध-संग्राम को उत्तेजित करने के बाद अपनी पर्वत मालाओं की ओर लौट रही थी।

उस समय देश में अशान्ति तथा भय का आतंक छाया हुआ था। अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। हमारी जाति में आत्म-सम्मानता का बिल्कुल ही अभाव था। अधार्मिक भाव पनप रहे थे। भारत भूमि अनेक कुरीतियों से कण्टकाकीर्ण हो चुकी थी। सैंकड़ों चिताएं, भारतीय देवियों के सजीव देहों को बलात् धधका रही थी। अधर्म तथा अज्ञानता की काली निशा में भारतीय बेसुध पड़े सो रहे थे। जन्ममात्र से ब्राह्मण (कर्म से चाहे चाण्डाल) कहलाने वाले धर्म के ठेकेदार बने हुए थे। साधारण-सी भूलों पर अथवा सन्देहमात्र से ही लोग जाति से निकाल दिये जाते थे। ज्योतिष की लीला, मृतक-श्राद्ध, पत्थर या मूर्तिपूजादि ने ब्रह्मबल, छात्रबल आदि को जड़वत् बना दिया था।

सत्य-ज्ञान का भानु अविद्या रूपी मेघों से ढप गया था और सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार था। आर्य जाति का बहुत बड़ा भाग धर्म ग्रन्थों को पढ़ना तो दूर रहा, इनके सुनने तक का अधिकारी नहीं माना जाता था। नारी जाति की दीन अवस्था थी। विधर्मियों के कुःप्रचार से वातावरण दूषित तथा विषैला हो चुका था। हमारी जाति के लाल धड़ाधड़ ईसाई और मुसलमान बनकर देश-धर्म के शत्रु बनते जा रहे थे। निराकार भगवान की उपासना के स्थान पर भूत, प्रेत, पत्थर और पिशाच पूजा, पीर-पैगम्बर औलिया तथा कब्रपरस्ती, धागा, जन्त्र-मन्त्र, झाड़-फूंक तथा देवी-देवताओं की भरमार और इनके सामने माथा झुकाना मात्र ही धर्म का मुख्य अंग बन चुका था। **ऐसी दुर्दशा के समय महर्षि जी का जन्म हुआ।** उन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया, वैदिक-आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय कर अपने मन-बुद्धि को निर्मल कर महाविद्वान् बन नाना प्रकार के कष्टों को झेलते हुए, विद्या का प्रकाश करने हित वे वीतराग संन्यासी बने और विश्व को वे दे गये जो **अकथनीय** तथा **अवर्णनीय** है, जिसका ऋण भार सहस्रों वर्षों में भी हम उतार न सकेंगे।

आज जो राष्ट्र ने करवट बदली है, देश में जागृति के जो चिन्ह दिखाई दे रहे हैं, देश की स्वतन्त्रता, समाज-सुधार, शिक्षा का प्रसार, वैदिक प्रचार, ब्रह्मचर्य का प्रसार, चरित्र-निर्माण, अछूतोद्धार, स्त्री शिक्षा आदि-आदि पुनीत आन्दोलन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। ये सब जगद्गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज की ही महती कृपा का फल है। इतने जादू भरे प्रभाव को समझने के लिये महर्षि जी के महान् जीवन चरित्र का तथा प्रकाश-स्तम्भ रूपी उनके अमूल्य ग्रन्थों का श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय करना आवश्यक है। इनका वर्णन इस लघु पुस्तिका में समुद्र के सामने एक बिन्दु-मात्र भी नहीं है। परम पूज्य महर्षि अपने महान् कार्यों तथा त्याग और तपस्या के कारण ही सदा-सदा के लिए अमर बन गये। संसार में उनकी समानता करने वाला कोई नहीं है।

जिस युग में महर्षि जी हुए, उसमें कई वर्ष पूर्व से आज तक ऐसा एक ही महापुरुष पैदा हुआ है जो विदेशी भाषा नहीं जानता था, जिसने स्वदेश से बाहर एक पग भी नहीं रखा था, जो पूर्ण स्वदेशी था अर्थात्

विचारों में, आचारों में, भाषा, वेष-भूषादि में, स्वदेशी था परन्तु वीतराग संन्यासी होने और परम् विद्वान् होने के कारण सबका भक्ति-भाजन बना, जिसका देशी-विदेशी सभी मान करते थे, ऊँचे से ऊँचे विदेशी पदाधिकारी और स्वदेशी राजे-महाराजे जिसका अति सम्मान किया करते थे--वे महापुरुष महर्षि दयानन्द ही थे। स्वामी जी महाराज पहले ही व्यक्ति थे जो अपने देश में पूर्ण स्वदेशी होते हुए भी पश्चिमी देशों के बड़े-बड़े नेताओं तथा जन-जन के गुरु कहलाये। आपको अनेक पश्चिमी विद्वानों ने अपना महान् गुरु, आचार्य और धर्म पिता माना है।

जन्म--स्वामी दयानन्द जी का जन्म वर्तमान सौराष्ट्र के मौरवी राज्य के टङ्कारा नामक नगर में सम्वत् 1881 विक्रमी तदनुसार सन् 1824 ई. में एक उच्च ब्राह्मण कुल में पं. कर्षण जी के घर हुआ। पूज्य माता का नाम यशोदा बाई था। पिता ने अपने प्यारे पुत्र का नाम मूल शङ्कर रखा। मूल जी के पिता बड़े धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्य पारायण व्यक्ति थे। वे शिव के बड़े उपासक थे और चाहते थे कि उनका मूल भी वैसा ही बने। मूल जी की शिक्षा का प्रबन्ध बाल्यकाल में घर पर ही किया गया था। यजुर्वेद कण्ठस्थ करने के अतिरिक्त आपने कई अन्य विषयों का भी अध्ययन किया था।

आपके पिता के पास पुष्कल भूमि थी एवं वे मौरवी राज्य के एक उच्चाधिकारी थे। जब मूल जी 14 वर्ष के थे तो इनके पिता ने शिवरात्रि के दिन उनको शिव का व्रत रखने का आदेश दिया। आज्ञाकारी बालक मूल जी ने उसे श्रद्धा सहित स्वीकार कर लिया और रात्रि को अपने पिताजी के साथ शिवालय में रात्रि जागरण एवं शिव-पूजन को गये। कुछ रात्रि व्यतीत होने पर उनके पिताजी तथा अन्य भक्त-गण सो गये परन्तु मूल जी की आँखों में नींद कहाँ ? उनको तो साक्षात् शिव के दर्शन करने की अभिलाषा थी। इसी बीच में एक चूहा मन्दिर के बिल में से निकला और शिव-पिण्डी पर भक्तों द्वारा चढ़ाया पूजोपहार बड़े आनन्द से खाने लगा और उस पर उछल-कूदकर मल-मूत्र द्वारा अपवित्र भी करने लगा। शिव दर्शन की लालसा से पत्थर के लिङ्ग के सामने व्रतोपवास किये मूर्त्तिवत् दृढ़, स्थिर, शान्त बैठे अबोध भक्त मूल जी

के शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। उनके अन्तःकरण में नाना प्रकार की विचार तरंगें उठने लगीं। ओह ! क्या यही वे भगवान् शिवजी हैं जो दैत्यों का संहार करने वाले और भक्तों को वर प्रदान करने वाले हैं? अहो? इसके सिर पर तो ये अपावन प्राणी चूहे दौड़ लगाकर और इसे अपवित्र कर इसके चढ़ावे को बड़ी निर्भयता से खा रहे हैं। इसमें तो इन तुच्छ जीवों को भगाने का भी बल नहीं। यह महादेव कैसा ? जो अपनी रक्षा नहीं कर सकता वो हमारी रक्षा क्या करेगा ? नहीं, यह सच्चा शिव नहीं हो सकता। पिता द्वारा बताने पर कि इस कलियुग में उस शिव का साक्षात् दर्शन नहीं होता। इसलिये पाषाणादि की मूर्त्ति बनाकर उसमें महादेव की भावना रखकर पूजा की जाती है, मूर्ति पूजा से मूल जी की आस्था उठ गइं और उन्होंने सच्चे शिव का साक्षात् करने के दृढ़ संकल्प किया। उन्होंने घर पर जाकर व्रतोपवास तोड़ दिया।

शिव रात्रि की घटना से सच्चे शिव की खोज में भटकती अबोध भक्त मूल जी की आत्मा जाग उठी। शिव जी तो न मिले, हाँ ! उसका **बोध** मिल गया। इसी कारण ही तो यह रात्रि **बोध-रात्रि** हुई।

इस घटना के दो वर्ष बाद प्यारी भगिनी का तथा पाँचवें वर्ष में उनसे अति प्रेम रखने वाले बड़े धर्मात्मा-विद्वान् चाचाजी की विशूचिका से मृत्यु हो गई। महर्षि जी के शब्दों में **उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं भी चाचा जी के सदृश एक दिन मरने वाला हूँ। उनकी मृत्यु होने से अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ कि संसार में कुछ भी स्थिर नहीं। परन्तु यह बात अपने माता/पिता से तो नहीं कही,** अपने मित्रों और विद्वान् पण्डितों को पूछने लगा कि अमर होने का कोई उपाय मुझे बताओ ! उन्होंने योगाभ्यास करने के लिये कहा। तब मेरे मन में आया कि **गृह त्याग कर कहीं चला जाँऊ।**

मूल जी के पूर्व जन्म के योग के संस्कार प्रबल हो गये। उन्होंने घर वालों से काशी में जाकर विद्या पढ़ने की इच्छा व्यक्त की, पिताजी तो सहमत हो गये किन्तु माता जी बिल्कुल ही सहमत न हुई। माता-पिता से आज्ञा पाकर अपनी जमींदारी से तीन कोस पर एक वयोवृद्ध विद्वान् के पास पढ़ने चले गये। इन्हीं पण्डित जी के सामने एक दिन मूल

जी ने प्रसंगवश अपने विवाह के प्रति घृणा के विचार और योग के प्रति झुकाव प्रगट किया। इसकी सूचना घरवालों को मिली तो उन्होंने मूल जी को वापस बुलवाकर उसे विवाह-बन्धन में बाँधकर वैराग्य स्रोत को समाप्त करने की ठानी। स्वामी जी के शब्दों में, **मेरे मन में तो घर छोड़कर निकल जाने की थी परन्तु ऐसी सम्मति कोई न देता था। जो सम्मति देता, वह लग्न करने की ही देता। उस समय मैंने निश्चित जाना कि अब विवाह किये बिना ये लोग कदाचित् न छोड़ेंगे और न अब मुझे भविष्य में विद्योपार्जन की आज्ञा मिलेगी और न माता-पिता मेरे ब्रह्मचारी रहने पर प्रसन्न होंगे। .... एक मास में विवाह की तैयारी भी हो गई। फिर गुपचुप सम्वत् 1903 के वर्ष में शौच के बहाने एक धोती साथ लेकर, घर छोड़ के सायंकाल के समय भाग उठा।**

स्वामी ब्रह्मानन्द जी से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा ले **शुद्ध चैतन्य** बने। कुछ दिनों के बाद सिद्धपुर में पिताजी द्वारा पकड़े गये किन्तु पहरा लगा होने पर भी समय पाकर लघुशङ्का के बहाने भाग निकले। स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती के आग्रह करके 24 वर्ष की आयु में संन्यास की दीक्षा ली और **दयानन्द सरस्वती** बने।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने योगाभ्यास करते हुए तपस्या का जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। शरीर पर एक कौपीन के सिवा कोई वस्त्र न था। नर्मदा तट से लेकर हिमालय की बर्फीली चोटियों और दुष्प्रवेश कन्दराओं तक पर्यटन करते हुए जिससे जो मिला; सीखा। शीत ऋतु में बर्फ से जमीं नदियाँ पार कीं, नग्न शरीर कण्टकाकीर्ण झाड़ियों और पत्थरों से लहू-लुहान हो जाता था। यही नहीं, उन्होंने कितने कष्ट और यातनाएँ सहीं। ये या तो वे जानते थे या स्वयं परम देव परमात्मन् ! इन कष्टों के श्रवण मात्र से ही बड़े-बड़े शूरवीरों के भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इन सब कष्टों को प्रसन्नता से सहन करते हुए ज्यों-ज्यों शिक्षा-दीक्षा से बल और ज्ञानवृद्धि करते थे—पूज्य स्वामी जी साहस और उत्साह से लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे। महर्षि जी की वन यात्रा की कथा बहुत लम्बी है। इस प्रकार वे अपने अखण्ड ब्रह्मचर्य

के बल, आत्मशक्तियों के विकास और शुभ सङ्कल्पों की पूर्त्ति की प्रबल कामना से प्रेरित होकर त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करते और योगाभ्यास करते-करते समाधिपर्यन्त योग की शिक्षा प्राप्त की और अपने शरीर को फौलाद के सदृश बना मथुरा में अपने अन्तिम गुरु परम पूज्य स्वामी विरजानन्द जी के द्वार को जा खटखटाया।

परिचय और वार्त्तालाप के अनन्तर **विरजानन्द जी ने कहा, दयानन्द! आपने अब तक मनुष्यकृत ग्रन्थों को ही पढ़ा है। जाओ! इन्हें यमुना में प्रवाहित कर दो और इन्हें भुला दो, तभी आर्षग्रन्थों की महिमा को हृदयङ्गम कर सकोगे।** बहुत कठिनाई और परिश्रम से पढ़े और प्राप्त ग्रन्थों को गुरुवर की आज्ञा से यमुना में प्रवाहित कर दिया तथा उन्हें भुलाकर आर्ष-ग्रन्थों के अध्ययन में लग गये। अध्ययन करते हुए श्री स्वामी जी ने अपने आप को एक आदर्श शिष्य सिद्ध किया। गुरु सेवा में उन्होंने देर-सवेर, अन्धेरा-प्रकाश, आँधी-तूफान की कभी परवाह नहीं की। यमुनाजल के पन्द्रह-बीस घड़े वे नित्य अपने कन्धों पर उठाकर गुरुजी को स्नान कराते थे। उनके पीने के लिये यमुना के मध्य से अति स्वच्छ जल बड़े प्रेम-श्रद्धापूर्वक लाया करते थे। उनके इन कार्यों में कभी ढील या त्रुटि नहीं हुई। आदेश-पालन, सेवा-शुश्रुषा, सरल स्वभाव और मेधा बुद्धि के कारण वे शीघ्र ही गुरु के पूर्ण कृपा-पात्र बन गये।

दयानन्द जी की तर्क शैली पर गुरु विरजानन्द जी मुग्ध थे। सब शिष्य तो अपना पाठ चुपचाप सुन लेते थे, परन्तु इनके पाठ के समय तर्क और प्रमाण की झड़ी लग जाती थी। युक्ति प्रयुक्तियों का तांता-सा बंध जाता था! गुरु जी कहते, "दयानन्द ! आज तक मैंने बहुत से विद्यार्थियों को पढ़ाया परन्तु जो आनन्द तुम्हें पढ़ाने में आता है, वह कभी भी नहीं आया।" एकान्त में वे दयानन्द जी को शास्त्र के गूढ़ रहस्यों को भी बताया करते थे।

स्वामी जी महाराज ने ढाई वर्ष गुरुवर के पद्-पद्मों में बैठकर अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्त-सूत्र तथा अन्य अनेक आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया। इतने काल तक उनको गुरु सत्संग में सोने में सुगन्ध

का आनन्द मिला। अपने आपको विद्या से भरपूर कर लेने के पश्चात् दयानन्द जी ने कुछ लवंग दक्षिणा रूप में लाकर गुरु से देशाटन की आज्ञा चाही। गुरुवर शिष्यों से बहुत स्नेह रखते थे। शिष्यों में भी वह शिष्य ! जिसे सम्पूर्ण शास्त्रीय भेद बताये, जिसके सामने हृदय खोलकर रख दिया, जिससे कुछ भी न छिपा न रखा। वही तर्क मेधावी बुद्धि का धनी शिष्य आज पृथक् हो रहा है, यह जानकर उनका जी भर आया। चरणों में पड़े शिष्य के सिर पर हाथ फेरते हुए—आशीर्वाद देते हुए कहा, **वत्स ! मैं आपके लिये मंगल कामना करता हूँ। ईश्वर आपकी विद्या को सफलता प्रदान करें। परन्तु गुरुदक्षिणा में इन लौंगों से भिन्न वस्तु माँगता हूँ। वह वस्तु तुम्हारे पास भी है। वत्स ! भारत देश में दीन-हीन जन अनेक-विधि दुःख पा रहे हैं जाओ! उनका उद्धार करो। मत-मतान्तरों के कारण जो कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई हैं, इनका निवारण करो !** आर्य जनता की बिगड़ी **हुई दशा को सुधारो! आर्य सन्तान का उपकार करो। ऋषि शैली प्रचलित करके वैदिक ग्रन्थों के पठन-पाठन में लोगों को प्रवृत्तिशील बनाओ! गंगा-यमुना के निरन्तर गतिशील प्रवाह की भाँति लोकहित कामना से क्रियात्मक जीवन बिताओ! प्रिय पुत्र! अन्य किसी भी सांसारिक पदार्थ की मुझे** चाह नहीं। स्वामी दयानन्द जी ने गुरुदेव के एक-एक वचन को स्वीकार किया और गद्गद् कण्ठ से कहा, **श्री महाराज देखेंगे कि उनका प्रिय शिष्य इन आज्ञाओं का किस प्रकार प्राणपन से पालन करता है।** गुरुवर की आज्ञा शिरोधार्य कर उनका शुभाशीर्वाद लेकर महर्षि दयानन्द कार्यक्षेत्र में उतरे।

दयानन्द जी घर से अमृत की खोज में निकले थे। सत्य और अमृत के अभिलाषी ने देखा—आज समूचा संसार विशेषतः सत्यज्ञान वेद की अनुयायिनी आर्यजाति, पथ-भ्रष्ट होकर मृत्यु के मुख में चली जा रही है। उन्होंने अपनी मुक्ति और ब्रह्मानन्द को छोड़कर इस जाति की डूबती नैया की पतवार सम्भाली।

महर्षि ने गालियाँ सुनीं, पत्थर खाये, कई बार विष पिया। कई बार उन पर घातक हमले हुए परन्तु प्रभु विश्वासी कौपीनधारी योगी इन

विघ्नों से जरा भी विचलित न हुए। राजा-महाराजाओं को उनके घर अथवा दरबार में ही धिक्कारते और कुत्तों वाले जीवन को त्याग कर सिंह बनने की शिक्षा देते थे। स्वामी जी त्याग और तपस्या की मूर्त्ति थे। नाना प्रकार के भय, लोभ, लालच विरोध होने पर भी प्रभु का अनन्य उपासक, देश-प्रेमी, संस्कृति का अमर पुजारी, देश-जग हितकारी, बाल ब्रह्मचारी, परोपकारी योगी अन्धकार निवारण हित तथा अपने परमपिता परमात्मा की आज्ञा पालन हित सदा धर्म क्षेत्र में डटा रहा।

महर्षि ने देश-हित और मानव-हित सत्य-प्रचार-धर्मप्रचार के निमित्त अगणित व्याख्यान दिये, कई शास्त्रार्थ किये, वेदों के भाष्य और सत्यार्थ-प्रकाशादि कई ग्रन्थों की रचना की। **सम्वत् 1932 में आपने सर्वप्रथम बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की।**

संसार में अनेक ऋषि, महर्षि, महात्मा, आचार्य और महापुरुष हुए किन्तु वे एकाङ्गी अथवा एक दिग्वर्ती थे। कोई महानात्मा किसी एक दिशा को दिखा सके, या मार्ग सुझा सके कोई दूसरा किन्तु देव दयानन्द से कोई दिशा अछूती नहीं रही तथा ऐसा कोई मार्ग नहीं छूटा जिसे उन्होंने न सुझाया हो। क्या चारित्रिक, क्या धार्मिक, क्या सामाजिक, क्या राष्ट्रीय, क्या सर्वजनीन क्षेत्र व दिशा-सभी में अनुपम प्रकाश किया। सचमुच वे प्रत्येक विषय में अनुपम थे।

आर्त्त भारत के भाग्य का भानु-दयानन्द **कार्तिक अमावस्या सम्वत् 1940 (दीपावली) मंगलवार को सायं 6 बजे मन्त्रोच्चारण के बाद—हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, सचमुच, तेरी यही इच्छा है। परमात्म देव! तेरी इच्छा पूर्ण हो! अहा मेरे परमेश्वर; तूने अच्छी लीला की है।** कहकर अपने आप को प्रभु के अर्पण करते हुए अस्ताचल की ओट में हो गये। जाते-जाते भी गुरुदत्त जी जैसे नास्तिक को दृढ़ आस्तिक बना गये, जिसने अपना सर्वस्व आर्यसमाज-वैदिक धर्म के अर्पण कर दिया।

अब महर्षि दयानन्द जी के जीवन तथा अमर ग्रन्थों के कुछ अमूल्य उदाहरण प्रस्तुत हैं जिनसे उनका दिग्दर्शन हो सके ताकि हम इनका श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय करके इन्हें अपने जीवन का आवश्यक अंग बनाकर

अपना भला कर सकें एवं अन्यों का भी हित साध सकें।

चरित्र-निर्माता दयानन्द

❖ जालन्धर की बात है, सरदार विक्रमसिंह ने स्वामी जी से ब्रह्मचर्य का बल पूछा। उस समय तो स्वामी जी ने कुछ अधिक न कहा, परन्तु एक दिन जबकि वे घोड़ों की बग्घी में बैठकर चलने लगे तो स्वामी जी ने तुरन्त पीछे से बग्घी का पहिया पकड़ लिया, बग्घी आगे न बढ़ सकी। कोचवान ने घोड़ों पर चाबुक पर चाबुक जमाए पर घोड़े एक पग भी न बढ़ सके। सरदार महोदय ने पीछे देखा तो स्वामी जी पहिया पकड़े हुए थे। पहिया छोड़ते हुए स्वामी जी ने कहा– ब्रह्मचर्य के बल का एक दृष्टान्त तो आपको मिल गया।

❖ काशी की घटना है कि इस्लाम मत का खण्डन सुनकर एकान्त में गङ्गा तट पर बैठे हुए स्वामी जी को दो मुसलमान बगल से पकड़कर गंगा में फैंकने लगे तो स्वामी जी ने उन दोनों को अपनी भुजाओं से ऐसा दबा लिया के वे न छूट सके और स्वामी जी की कूद के साथ गङ्गा में डुबकियाँ लेने लगे।

❖ कासगंज में एक सड़क पर बहुत मनुष्यों की भीड़ देखी, बहुत से व्यक्ति इधर-उधर रुके खड़े थे। बीच में बड़े-बड़ दो साँड लड़ रहे थे, अतः मार्ग रुक गया था। स्वामी जी लोगों को मना करने पर भी आगे बढ़े और उन दोनों साँडों के सींग पकड़कर उन्हें अलग-अलग कर दिया।

❖ जब अन्तिम बार काशी गये तो एक दिन सैर से लौटते हुए एक बैलगाड़ी को कीचड़ में धंसे हुए देखा। हांकने वाला सोटे पर सोटे बरसा रहा था किन्तु बैल हिलने में भी न आते थे। महर्षि जी बड़े दुःखी हुए। स्वयं कीचड़ में उतरे। बैल छुड़वा दिये और स्वयं गाड़ी को खींचकर बाहर कर दिया। जो काम बैलों की दोहरीशक्ति न कर सकी, वह एक अकेले ब्रह्मचारी की भुजाओं ने सहज में वश कर दिया।

❖ मिर्जापुर में छोटूगिरि पुजारी ने गुण्डों को स्वामी जी के पास भेजा। वे स्वामी जी को अण्ड-बण्ड बोलते रहे। स्वामी जी ने उठकर

ऐसा हुङ्कार किया कि वे कांपने लगे और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। सचेत होने पर स्वामी जी ने समझा-बुझाकर उन्हें विदा किया।

❖ **कुछ चिन्ता मत करो। जिनका सहाय धर्म है, उसी का सहाय परमेश्वर है। जब बुरे बुराई न छोड़े तो भले भलाई क्यों छोड़े।**

❖ मथुरा में गुरु विरजानन्द के यहाँ अध्ययनकाल में दयानन्द के ब्रह्मचर्य की धाक बँधी हुई थी। एक बार यमुना में स्नान कर तट पर ध्यानावस्थित बैठे हुए दयानन्द के चरणों में एक देवी ने स्नान किये हुए अपना गीला सिर रखकर श्रद्धा से प्रणाम किया तो उन्होंने माता! माता!! कह गोवर्धन पर्वत के निर्जन स्थान में जाकर उपवास और गायत्री जाप से तीन दिन प्रायश्चित किया कि कहीं स्त्री की मूर्त्ति पवित्र मानस पट पर चित्रित न हो जावे।

❖ विरोधियों द्वारा दयानन्द जी को पतित करने के लिये एक वेश्या बहका कर भेजी गई। वह स्वामी जी के पास जाकर बोली, **महाराज! मैं आप जैसा अपना पुत्र चाहती हूँ।** वेश्या की भावना स्पष्ट है परन्तु दयानन्द ने उत्तर दिया—**अच्छा आज से मैं तेरा पुत्र और तू मेरी माता।** बस, इतना कहना था कि उसकी काया पलट हो गई और वह चरणों में गिर पड़ी।

❖ ओखी मठ के महन्त ने चेले होने और उत्तराधिकारी बनाने का लोभ दयानन्द जी को दिया परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि, **मेरे घर की सम्पत्ति इस मठ की सम्पत्ति से कम न थी,** उसे क्यों छोड़ता?

❖ सन् 1877 में लाहौर में स्वामी जी को महाराजा काश्मीर ने पं. मनफूल द्वारा कहलवाया कि, **आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करें तो मेरा कोष आप के समर्पित है।** महर्षि ने उत्तर दिया कि **मैं काश्मीर पति को सन्तुष्ट करूँ या वेद प्रतिपादित ब्रह्म को?** लोभवश सत्य को न छोड़ा!

❖ महाराणा उदयपुर ने स्वामी जी को कहा, **आप एक-लिङ्ग के मन्दिर के महन्त बन जायें, यह राज्य भी उसके आधीन है।** स्वामी जी ने झट उत्तर दिया, आप मुझसे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की

आज्ञा को भङ्ग कराना चाहते हैं ? मन्दिर तो क्या आपके इस राज्य से मैं एक दौड़ में पार हो सकता हूँ किन्तु विश्वविराट् परमेश्वर की आज्ञा का उल्लंघन करके, सत्य का प्रचार छोड़कर किस कोने में जाऊँगा? **मैं कदापि सत्य से नहीं हट सकता।**

❖ कर्णवास की घटना है कि वहाँ के राव कर्णसिंह स्वामी जी से रासलीला के खण्डन के कारण विरोधी हो गये। स्वामी जी के पास आकर तलवार का भय दिखलाया और तलवार निकाल कर आक्रमण करने को जैसे ही उद्यत हुआ तो निर्भीक संन्यासी ने गरज कर उसके हाथ से तलवार छीनकर भूमि पर एक हाथ से ऐसे जोर से टेकी कि वह टुकड़े-टुकड़े हो गई। राव कर्णसिंह को क्षमादान दिया।

❖ लाहौर में नवाब रज़ा अलीखान के उद्यान में ठहरे। 11 मार्च सन् 1878 ई. को मुसलमानी मत की आलोचना में व्याख्यान दिया। नवाब भी सुन रहे थे। व्याख्यान समाप्ति पर किसी के कहने पर कि नवाब साहब नाराज हो जायेंगे। स्वामी जी ने कहा—**मैं इस्लाम आदि की प्रशंसा करने नहीं आया, मैं तो वैदिक धर्म को ही सच्चा मानता हूँ, उसका उपदेश करने आया हूँ। मुझे परमात्मा से भिन्न अन्य किसी का भय नहीं है।**

❖ बरेली में स्वामी जी ने ईसाई मत की आलोचना की तो वहाँ का कमिश्नर रुष्ट हो गया। उसने व्याख्यान का प्रबन्ध करने वाले लक्ष्मीनारायण जी को अपने बंगले पर बुलाकर कहा कि स्वामी जी से बोलो कि बहुत सख्ती से काम न लें। स्वामी जी ने यह सुनकर व्याख्यान में ही कह दिया कि, कहा जाता है कि **कमिश्नर अप्रसन्न होंगे, गवर्नर पीड़ा देंगे, पर हम सत्य के कहने में चक्रवर्ती राजा से भी नहीं डरते, आत्मा अमर है।**

❖ अजमेर के भक्तों ने स्वामी जी को कहा कि वे जोधपुर न जावें। वह मूलासुर का देश है, वहाँ का महाराजा वेश्यागामी है, वहाँ कष्ट होगा। परन्तु स्वामी जी ने उत्तर दिया—यदि हमारी उंगालियों **की बत्तियाँ बनाकर जला दें तो भी मैं सत्य कहे बिना न रहूँगा**

❖ जोधपुर में रावराजा तेजसिंह ने स्वामी जी से कहा कि आप

महाराज जोधपुर के चरित्र की आलोचना न करना, तो स्वामी जी ने कहा—आप हमसे झूठ बुलवाना चाहते हैं, मैं सत्य ही कहूँगा, स्वामी जी ने सभा में वेश्यागमन के दोषों को बताया, वेश्यागामियों को फटकारा और कहा कि क्षत्रिय सिंह और वेश्या कुत्तिया हैं, कुत्तियों पर आसक्त होना कुत्तों का काम है।

❖ लाहौर में आर्यसमाज का सत्सङ्ग हो रहा था। स्वामी जी आए तो लोग खड़े हो गए। स्वामी जी ने निषेध किया कि कितना भी बड़ा मनुष्य आवे, उपासकों को सत्संग में खड़ा न होना चाहिये क्योंकि परमेश्वर से बड़ा कोई नहीं, इस प्रकार होने से उपासना धर्म का निरादर होता है।

❖ भक्तों ने महर्षि जी के महान् कार्यों के लिये स्मारक बनाने की हार्दिक इच्छा व्यक्त की किन्तु उन्होंने कहा, ऐसा मत कहना किन्तु मेरे शव की भस्म खेत में डाल देना, स्मारक से मूर्त्तिपूजा चल पड़ेगी।

❖ सुनने और प्रश्नोत्तर होने के पश्चात् सज्जनों को यही योग्य है कि सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करके स्वयं सदा आनन्दित होकर सबको आनन्दित किया करें।

❖ क्या किया जाये ? जिनके लिये (हम) उपकार करते हैं, वे ही उल्टे विरोध करते हैं। अच्छा, जो दुष्ट दुष्टता को नहीं छोड़ते, श्रेष्ठ श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें ? तथा जो मूर्ख लोग अपनी बुराई को नहीं छोड़ते, तो बुद्धिमान् धर्मात्मा लोग अपनी धर्मात्मता को क्यों छोड़कर दुःख-सागर में पड़ें।

❖ चाहे कोई हो, जब तक मैं (उसमें) न्यायाचरण देखता हूँ, (तब तक उसके साथ) मेल करता हूँ और जब अन्यायाचरण प्रकट होता है, फिर उससे (मैं) मेल नहीं करता, इसमें (चाहे) कोई हरिश्चन्द्र हो या अन्य कोई हो।

समाज-सुधारक दयानन्द

❖ प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

❖ संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

❖ सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

❖ कर्णवास में राव कर्णसिंह द्वारा प्रहार करने के सम्बन्ध में भक्त जनों ने पुलिस में रिपोर्ट करने की सम्मति श्री स्वामी जी को दी तो स्वामी जी ने यह कहकर पुलिस में रिपोर्ट करने से इन्कार कर दिया कि, **जब वह अपने क्षत्रियत्व को पूरा न कर सका, हम अपने ब्रह्मणत्व से क्यों पतित हों।**

❖ अनूप शहर में श्री सय्यद मुहम्मद मैजिस्ट्रेट स्वामी जी के पास उनके विषदाता को बेड़ियों में बाँधकार लाए तो स्वामी जी ने तुरन्त यह कहकर छुड़वा दिया कि **मैं बँधवाने नहीं आया, मैं तो छुड़वाने आया हूँ।**

❖ नर अधम जगन्नाथ को जिसने दूध में विष दिया था महर्षि जी ने पकड़ लिया। जगन्नाथ ने अपना अधमतम अपराध मान भी लिया किन्तु कर्म गति और फल भोग के विश्वासी महर्षि ने ताड़ना-तर्जना तो दूर, उसे दुर तक नहीं कहा। वे गम्भीर भाव से दया दर्शाते हुए बोले, **जगन्नाथ, मेरे इस समय मरने से मेरा कार्य सर्वथा अधूरा रह गया। आप नहीं जानते कि इससे लोकहित की कितनी भारी हानि हुई है। अच्छा, विधाता के विधान में ऐसा ही होना था। ....जगन्नाथ ! लो यह कुछ रुपये हैं, मैं आपको देता हूँ, चुपचाप भाग जाओ।**

❖ आबूपर्वत पर डाक्टर लक्ष्मणदास स्वामी जी की घोर रोगावस्था को देख अपने उच्चाधिकारी से छुट्टी न मिलने पर नौकरी से त्याग-पत्र लिखकर देने लगे तो श्रद्धेय स्वामी जी ने लेकर उसे फाड़ दिया कि—**मेरे कारण आपको हानि हो, ऐसा मुझे अभीष्ट नहीं।**

❖ सहारनपुर में स्वामी जी ने कहा कि यदि कोई ब्राह्मण आदि धर्म से पतित होकर ईसाई, मुसलमान हो जाये और फिर पश्चाताप करके वैदिक धर्म में वापिस आना चाहे तो उसे अवश्य वापिस ले लेना चाहिये।

इसी प्रकार धर्मपुर में एक नवमुस्लिम रईस ने पूछा—क्या हम शुद्ध हो सकते हैं ! तो स्वामी ने उत्तर दिया—हाँ, अवश्य, जब धर्माचरण करोगे तो अवश्य हो जाओगे।

❖ महर्षि जी ने यजुर्वेद (26/2) के इस मन्त्र—यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय चारणाय स्वाय च । के प्रमाण से ब्राह्मण से लेकर शूद्र, अतिशूद्र तक को वेद पढ़ने का अधिकार दिया।

❖ महर्षि जी ने स्त्रियों को भी वेद पढ़ने का अधिकार—इमं मन्त्रं पत्नी पठेत् अर्थात् इस मन्त्र को पत्नी पढ़े। इस वचन से सिद्ध किया। यदि स्त्रियों को न पढ़ाया जाय तो वे मन्त्र कैसे पढ़ें। गार्गी, उलोपा, सुलभा, मैत्रेयी, सरस्वती आदि स्त्रियाँ वेदवेत्‍ृ और विदुषी हुई हैं। यदि पढ़ने का अधिकार न होता तो वे कैसे विदुषी बनतीं ?

❖ गुरुदत्त जी जैसे कट्टर नास्तिक श्री स्वामी जी के प्रभु विश्वास तथा अन्तिम आस्तिक क्रियाओं से दृढ़ आस्तिक बने और उन्होंने वैदिक धर्म के लिये अपना जीवन अर्पण कर दिया। इसी प्रकार ला. मुन्शीराम जी में कई व्यसन थे किन्तु जब उनको स्वामी जी का सत्सङ्ग मिला तो सब व्यसन छोड़ आर्यसमाज के सच्चे सेवक बने। पहले महात्मा और फिर स्वामी श्रद्धानन्द बन वैदिक धर्म-आर्य-समाज, राष्ट्र के लिये कई महान कार्य किये और शहीद बनकर सदा के लिए अमर हो गये।

❖ अमींचन्द नाम के व्यक्ति एक तहसीलदार थे जो कवि और संगीतज्ञ थे किन्तु थे बड़े दुराचारी। एक बार उसकी कविता सुनकर महर्षि जी ने कहा कि—अमींचन्द ! तुम हो तो हीरे किन्तु कीचड़ में पड़े हो। स्वामी जी के इस हित वचन ने जादू का असर किया। भक्त अमींचन्द जी ने सब व्यसन छोड़कर सच्चे आर्य बनकर आर्यसमाज की महान सेवा की। उनके मधुर गीतों को सुनकर सब झूम उठते हैं।

❖ यदि पुरुष शिक्षित हों और स्त्रियाँ शिक्षित न हों तो फिर गुण-कर्म-स्वभाव समान न होने पर देवासुर-संग्राम ही घर में रहे।

❖ कई स्थानों पर स्वामी जी ने अपने व्याख्यानों में बाल विधवाओं का पुनर्विवाह कर देने का भी आदेश दिया। बालविवाह का निषेध किया

जिससे बाल-विधवाएँ होने ही न पायें।

❖ हरिद्वार में एक दिन स्वामी जी बैठे हुए सहसा लेट गये और थोड़ी देर पश्चात् दीर्घ-श्वास खींचकर कहा कि विधवाओं और गौओं की हाय से यह देश नष्ट हो गया।

वैदिक धर्मोद्धारक : दयानन्द

❖ वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। स्वामी जी ने वेदों का भाष्य किया।

❖ कलकत्ता में स्वामी जी ने अपने भाषण में कहा कि वेदाध्ययन के बिना संस्कृत पढ़ाने का कोई लाभ नहीं। पुराणों की कुत्सित शिक्षा से लोग व्यभिचारी बन जाते हैं।

❖ वैदिक धर्म प्रचार के लिये स्वामी जी ने सम्वत् 1932 (10 अप्रैल सन! 1875) में बम्बई में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की। लाहौर में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना सम्वत् 1934 (24 जून 1877 ई. को डाक्टर रहीम की कोठी पर की।)

❖ एक निर्धन ने पूछा–महाराज धनी तो दान-पुण्य आदि उपकार कर सकता है परन्तु मैं निर्धन क्या करूँ ? तो स्वामी जी ने उत्तर दिया **तुम अपने हृदय से पर-उपकार करो और अनिष्ट चिन्तन के भाव निकाल दो, ऐसा करना संसार का उपकार है।**

❖ मूर्त्तिपूजा को महर्षि जी वेद के विरुद्ध मानते थे। **न तस्य प्रतिमा अस्ति**–परमात्मा की मूर्त्ति नहीं–यजुर्वेद अ. 32 के इस प्रमाण से मूर्त्ति-पूजा का प्रबल खण्डन करते थे। नाना प्रकार की जड़ पूजा, कब्र परस्ती को भी मूर्त्ति-पूजा का ही अंग समझते थे।

❖ प्राचीनों को शीघ्रगामी-रथ (रेल) के सिद्धान्त ज्ञात थे। त्रिपरारि के विषय में कहा है कि अपनी कलाभिज्ञता के कारण एक समय में तीन स्थानों में युद्ध करता था। प्राचीन समय में धूम्रयान (वायुयान) भारत में थे।

❖ ऋग्, यजुः, साम, अथर्व नाम से प्रसिद्ध जो ईश्वरोक्त सत्य विद्या धर्मयुक्त वेद चतुष्टय (संहितामात्र मन्त्र भाग) है, वह निर्भ्रान्त

नित्य स्वतः प्रमाण है। इसके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं।......अन्य ऋषिकृत ग्रन्थ परतः प्रमाण वेदानुकूल होने पर। महर्षि वेद के विरोध में अप्रमाण मानते थे।

❖ क्योंकि मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से ले के पूर्व मीमांसा पर्य्यन्त अनुमान से तीन हज़ार ग्रन्थों के लगभग मानता हूँ। (न जाने महर्षि जी ने कितने सहस्र ग्रन्थ पढ़े होंगे?)

राष्ट्रपितामह दयानन्द

❖ हिन्दी भाषा को स्वामी जी ने **आर्य भाषा** नाम दिया, गुजराती होते हुए और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी आर्य भाषा में अपने ग्रन्थ लिखे और **आर्य प्रकाश** पत्र निकाला। आर्यों को आर्य भाषा सीखना अनिवार्य ठहराया। आर्य भाषा के प्रचार में महर्षि जी का स्थान सर्वोपरि है। सौ वर्ष पूर्व हरिद्वार में स्वामी जी ने कहा, **इस देश वाले यदि आर्य भाषा न सीख सकेंगे तो उनसे और क्या आशा ? भारत की राष्ट्र भाषा होने योग्य यही भाषा है, यह स्थान इसी को दिया जावे।**

❖ जब तक एक भाषा, एक धर्म और एक सुख-दुःख न माना जावेगा तब तक देश का पूर्ण हित सिद्ध नहीं हो सकता।

❖ लाहौर में श्री स्वामी जी ने कहा—जब मैं गंगा-तट पर भ्रमण करता था तो हृष्ट-पुष्ट था। आप लोगों की चिन्ता से तब से बहुत दुबला हो गया।

❖ एक बार कोई स्त्री अपने मृत बच्चे को नदी में प्रवाहित कर कफन भी उतार कर ले चली तो स्वामी जी ने ऐसा देख कारण पूछा, **माता यह ऐसा क्यों** ? उस देवी ने उत्तर दिया कि **महाराज! मैं इतनी दरिद्र हूँ कि इसके फूँकने का ईंधन और ऊपर का कफन नहीं लगा सकती।** स्वामी जी जैसे धीर, गम्भीर, योगीजन की आँखों से आँसू बह निकले, **हाय रे!! मेरे देश!!! क्या तेरे अन्दर कभी दूध-घी की नदियाँ बहा करती थीं ? आज एक देवी अपने मृत बच्चे पर वस्त्र का टुकड़ा (कफन) भी न दे सके ?**

❖ देखो ! अंग्रेज अपने देश के बने हुए जूते पहनते हैं और

खान-पान भी स्वदेश में जैसा करते थे वैसा ही यहाँ भी करते हैं, उसे नहीं छोड़ा। तुम लोगों ने उनका अनुकरण किया, यह तुम्हारी दुर्गति का कारण है।

❖ **सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।** जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना **सत्य** कहाता है।

❖ स्वामी जी ने अन्य मत वालों से कहा कि जैसा आर्यसमाज देश का हित साध सकता वैसा अन्य मत वाला नहीं। आप लोगों को चाहिये कि आर्य समाज के साथ मिलकर भारत की उन्नति का कार्य करें, क्योंकि जिस देश का अन्न खावें, शरीर पले, उस देश की उन्नति करना परम कर्त्तव्य है।

❖ सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्यकुल में ही हुए थे। अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राज-भ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं।..........जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह।..........विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने का कारण आपस की फूट, मतभेद है।.......... .... परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जावे।

❖ कोई कितना करे जो स्वदेशीय राजा होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।..................मतमतान्तरों के आग्रह से रहित अपने पराये का पक्षपातशून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है।

❖ गो रक्षार्थ कितनी सही हो चुकी है, इसका उत्तर लिखना। इस (आर्यभाषा) के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ जो मेमोरियल छपे हैं, सो शीघ्र भेजना! और आप लोग भी जहाँ तक हो सके गो-रक्षार्थ सही और आर्य भाषा के राज कार्य में दूसरा पत्र प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिये।

❖ जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आकर गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपायी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है।

संक्षिप्त सत्यार्थ-प्रकाश

भूमिका

द्वितीय भाग

यह ग्रन्थ 14 (चौदह) समुल्लास अर्थात् चौदह विभागों में रचा गया है। इसमें 10 (दश) समुल्लास पूर्वार्द्ध और चार उत्तरार्द्ध में बने हैं :—

(1) प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओंङ्काराऽऽदि नामों की व्याख्या।

(2) द्वितीय समुल्लास में सन्तानों की शिक्षा।

(3) तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठनपाठनव्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने-पढ़ाने की रीति।

(4) चतुर्थ समुल्लास में विवाह और गृहाश्रम का व्यवहार।

(5) पञ्चम समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम की विधि।

(6) छठे समुल्लास में राजधर्म।

(7) सप्तम समुल्लास में वेंदेश्वर विषय।

(8) अष्टम समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय।

(9) नवम समुल्लास में विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष की व्याख्या।

(10) दशवें समुल्लास में आचार, अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय।

(11) एकादश समुल्लास में आर्य्यावर्त्तीय मत-मतान्तर का खण्डन-मण्डन विषय।

(12) द्वादश समुल्लास में चारवाक्, बौद्ध और जैन मत का विषय।

(13) त्रयोदश समुल्लास में ईसाई मत का विषय।

(14) चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय।

तथा स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश।

◆ मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-असत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है, उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहलाता है।

◆ जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

◆ मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुखाना व किसी की हानि का तात्पर्य है, किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

◆ यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मत-मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ व मत वालों के साथ वर्त्तता हूँ! जैसे स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूँ, वैसे विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है।

◆ जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानि मात्र करता रहता है वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।

◆ इसलिये जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बाईबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों का ग्रहण और

दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हूँ, वैसा सबको करना योग्य है।

♦ इसलिये मैं अपने परिश्रम को सफल समझता और अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने धरता हूँ। इसको देख दिखला के मेरे श्रम को सफल करें और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करके स्वयं व सब महाशयों का मुख्य कर्त्तव्य काम है।

सर्वात्मा, सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करें।

प्रथम समुल्लासः

(ईश्वर के ओङ्कारादि नामों की व्याख्या)

● ओ३म् यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक **ओ३म्** समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे—अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।

● सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम **ओ३म्** को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम हैं।

● सब जगत् के बनाने से **ब्रह्मा**, सर्वत्र व्यापक होने से **विष्णु**, दुष्टों को दण्ड देके रुलाने से **रुद्र**, मङ्गलमय और सबका कल्याण कर्त्ता होने से **शिव** (परमेश्वर के नाम हैं।)

● परन्तु **ओ३म्** यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक हैं।

● **ओ३म्** जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं।

● सिद्ध हुआ कि जहाँ-जहाँ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं, वहीं-वहीं इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है।

● जो (शन्नो मित्रः शं वरुणः) इस मन्त्र में मित्रादि नाम हैं, वे भी परमेश्वर के हैं क्योंकि स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठ की ही की जाती है। श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो गुण, कर्म, स्वभाव और सत्य-सत्य व्यवहारों में सबसे अधिक हो। उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ उसको परमेश्वर कहते हैं। जिसके तुल्य कोई न हुआ, न है, न होगा। जब तुल्य नहीं तो उससे अधिक क्यों कर हो सकता है ?

● इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, उससे भिन्न की कभी न करें, क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान्, दैत्य, दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्यों ने भी परमेश्वर ही में विश्वास करके उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करो, उससे भिन्न की नहीं की। वैसे हम सबको करना योग्य है।

● (ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः) इसमें तीन बार शान्ति पाठ का यह प्रयोजन है कि त्रिविधताप अर्थात् इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं,—एक **आध्यात्मिक** जो आत्मा शरीर में अविद्या, राग, द्वेष, मूर्खता और ज्वर पीड़ादि होते हैं। दूसरा **आधिभौतिक** जो शत्रु, व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है। तीसरा **आधिदैविक** अर्थात् जो अतिवृष्टि, अतिशीत, अति उष्णता, मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है। हे ईश्वर ! इन तीन प्रकार के क्लेशों से आप हम लोगों को दूर करके कल्याणकारक कर्मों में सदा प्रवृत्त रखिये।

● जीव जिसका मन में ध्यान करता है, उसको वाणी से बोलता, जिसको वाणी से बोलता है, उसको कर्म से करता, उसी को प्राप्त होता है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है।

● जो सत्य धर्म प्रतिपादक, सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि के आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाश कभी नहीं होता, इसलिये उस परमेश्वर का नाम **गुरु** है।

● ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं परन्तु इनसे भिन्न परमात्मा

के असंख्य नाम हैं। क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं, वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं। उनमें से प्रत्येक गुण, कर्म और स्वभाव का एक-एक नाम है। इससे ये मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने बिन्दुवत् हैं।

● वेदादि शास्त्रों में परमात्मा के असंख्य गुण, कर्म, स्वभाव व्याख्यात किये हैं, उनके पढ़ने-पढ़ाने से बोध हो सकता है और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा-पूरा हो सकता है जो वेदादिशास्त्रों को पढ़ते हैं।

● **श्री गणेशाय नमः** इत्यादि शब्द कहीं नहीं और जो वैदिक लोग वेद के आरम्भ में **हरिः ओ३म्** लिखते और पढ़ते हैं, यह पौराणिक और तान्त्रिक लोगों की मिथ्या कल्पना से सीखे हैं। वेदादि शास्त्रों में हरि शब्द आदि में कहीं नहीं। इसलिये **ओ३म्** वा **अथ** शब्द ही ग्रन्थ के आदि में लिखना चाहिये।

द्वितीय समुल्लासः

(सन्तानों की शिक्षा)

● वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों।

● जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता इसलिए (मातृमान्) अर्थात् **प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य सः मातृमान्**। धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे

● बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हो और किसी अङ्ग से कुचेष्टा न करने पावें। .... जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्तमान और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे।

● जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें।

● जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से

कैसे-कैसे वर्त्तना इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावें। जिनसे सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवें और जो-जो विद्या धर्म-विरुद्ध, भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश कर दें, जिससे भूत-प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।

● जब गुरु का प्राणान्त हो तब मृतक-शरीर जिसका नाम **प्रेत** है और जब उस शरीर का दाह हो चुका तब उसका नाम **भूत** होता है अर्थात् अमुकनामा पुरुष था। वह ऐसा ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है परन्तु जिसको शङ्का, कुसंग, कुसंस्कार होता है उसको भय और शङ्कारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखनाशक होते हैं।

● अज्ञानी लोग वैद्यक शास्त्र वा पदार्थविद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपातज्वरादि शारीरिक और उन्मादकादि मानस रोगों का नाम भूत-प्रेतादि धरते हैं।

● जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं, वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होकर सुख दे सकें ?

● **(प्रश्न)** तो क्या ज्योतिष शास्त्र झूठा है?

(उत्तर) नहीं, जो उसमें अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फल की लीला है, वह सब झूठी है।

● वह **जन्मपत्र** नहीं किन्तु उसका नाम **शोकपत्र** रखना चाहिये क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है तब सबको आनन्द होता है परन्तु वह आनन्द तब तक होता है कि जब तक जन्मपत्र बनके ग्रहों का फल न सुनें।

● अब रह गई—शीतला और मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र आदि। ये भी ऐसे ही ढोंग मचाते हैं और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं उनको भी महापामर समझना चाहिए। इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था ही में सन्तानों के हृदयों

में डाल दें कि जिससे स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़के दुःख न पावें।

● और वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःख प्राप्ति भी जना देनी चाहिये। जैसे देखो जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है।

● जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता, वह नपुंसक, महाकुलक्ष्णी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है।

● जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तो तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार की अन्य-अन्य शिक्षा भी माता और पिता करें।

● उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं।

● जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करने वाले की होती है वैसी अन्य किसी की नहीं। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिये।

● छल, कपट वा कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है तो जो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये ?

● (बालक) क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे। जितना बोलना चाहिये उससे न्यून वा अधिक न बोले।

● बड़ों को मान्य दे, उनके सामने उठकर जा के उच्चासन पर बैठावे, प्रथम नमस्ते करे। उनके सामने उत्तमासन पर न बैठे। सभा में वैसे स्थान में बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे।

● विरोध किसी से न करे। सम्पन्न होकर गुणों का ग्रहण और

दोषों का त्याग रखे। सज्जनों का संग और दुष्टों का त्याग, अपने माता, पिता और आचार्य की तन, मन और धनादि उत्तम-उत्तम पदार्थों से प्रीतिपूर्वक सेवा करे।

- जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन, छादन और व्यवहार करें, करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें। मद्य-मांसादि के सेवन से अलग रहें।

- यही माता, पिता का कर्त्तव्य कर्म, परमधर्म और कीर्त्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना।

तृतीय समुल्लासः

(ब्रह्मचर्य, पठन-पाठन व्यवस्था)

● सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चाँदी, माणिक, मोती, मूँगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता।

● जो अध्यापक पुरुष या स्त्री दुष्टचारी हों, उनसे शिक्षा न दिलावें। किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं।

● द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्यकुल अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज दें।

● विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए और वे लड़कों और लड़कियों की पाठशाला दो कोश एक-दूसरे से दूर होनी चाहियें।

● जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य अनुचर हों, वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पाँच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पाँच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे।

● सब को तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हों, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिये।

● इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजें, वह दण्डनीय हो।

● पिता, माता वा अध्यापक अपने लड़का, लड़कियों को अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश कर दें।........ गायत्री मन्त्र का उपदेश करके सन्ध्योपासना की जो स्नान, आचमन, प्राणायाम आदि क्रिया है, सिखलावें।

● प्रथम स्नान इसलिये है कि जिससे शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्यादि होते हैं।........... दूसरा प्राणायाम–जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं, वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं।.... **आचमन** उतने जल.........से करें कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचे, न इससे अधिक, न न्यून।

● पुनः समन्त्रक प्राणायाम, मनसापरिक्रमण, उपस्थान, पीछे परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की रीति सिखलावे। पश्चात् **अघमर्षण** अर्थात् पाप करने की इच्छा भी कभी न करे। यह सन्ध्योपासना एकान्त देश में एकाग्रचित से करे।

● सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं-प्रातः दो ही काल में करे। दो ही रात-दिन की सन्धि वेला हैं; अन्य नहीं। न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करे।

● जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस जगत् के पदार्थ रचे हैं। वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिए।

● **(प्रश्न)** होम से क्या उपकार होता है?

(उत्तर) सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु ओर जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

● **(प्रश्न)** तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है ?

(उत्तर) मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जाएं, मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें, वेद पुस्तकों

का पठन-पाठन और रक्षा भी होवे।

● (प्रश्न) क्या इस होम करने के बिना पाप होता है ?

(उत्तर) हाँ! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त कराता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिये उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये।

● आर्यवर शिरोमणि महाशय, ऋषि, महर्षि, राजे-महाराजे लोग बहुत-सा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त्त देश रोगो से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाये।

● **यम** पाँच प्रकार के होते हैं।............ अर्थात् (अहिंसा) वैर-त्याग, (सत्य) सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना, (अस्तेय) अर्थात् मन, वचन, कर्म से चोरी त्याग, (ब्रह्मचर्य) अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का संयम, (अपरिग्रह) अत्यन्त लोलुपता, स्वत्वाभिमानरहित होना ? इन पाँच यमों का सेवन सदा करें।

● (शौच) अर्थात् स्नानादि से पवित्रता, (सन्तोष), सम्यक्-प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं किन्तु पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना, हानि-लाभ में हर्ष वा शोक न करना, (तप) अर्थात् कष्ट-सेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान, (स्वाध्याय) पढ़ना-पढ़ाना, ईश्वर-प्रणिधान, ईश्वर की भक्ति विशेष से आत्मा के अर्पित रखना, ये पाँच नियम कहते हैं।.........इन दोनों यम और नियम का सेवन किया करें।

● जैसे विद्वान् सारथि घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन और आत्मा को खोटे कामों में खैंचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करे।

● जीवात्मा इन्द्रियों के वश होके निश्चित बड़े-बड़े दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को अपने वश में करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है।

● जो ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय पुरुष है उनके वेद, त्याग, यज्ञ, नियम

और तप तथा अच्छे कर्म सिद्धि को प्राप्त नहीं होते।

● नित्य कर्म में अनध्याय नहीं होता। जैसे श्वास-प्रश्वास सदा लिये जाते हैं, बन्द नहीं किये जाते। वैसे नित्यकर्म प्रतिदिन करना चाहिये।

● जो सदा नम्र, सुशील, विद्वान् और वृद्धों की सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, कीर्त्ति और बल ये चार सदा बढ़ते हैं और जो ऐसा नहीं करते उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते।

● जो पक्षपातरहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्यागरूप आचार है उसी का नाम **धर्म** और इससे विपरीत जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण, सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहण रूप कर्म है, उसी को **अधर्म** कहते हैं।

● जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें, वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें क्योंकि धर्माऽधर्म का निश्चय बिना वेद के ठीक-ठीक नहीं होता।

● सब वर्णों के स्त्री-पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये। अब जो-जो पढ़ना-पढ़ाना हो वह-वह अच्छे प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है।

● जो महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्यों कर हो सकता है ?

● महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़ के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ खोदना कौड़ी का लाभ होना और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

● जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके, देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़ पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है।

● जो वेदों को पढ़के धर्मात्मा, योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं, वे सब परमेश्वर में स्थित होके मुक्तिरूपी परमानन्द को प्राप्त होते

हैं। इसलिये जो कुछ पढ़ना या पढ़ाना हो वह अर्थज्ञान सहित चाहिये।

● ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिए पढ़ना चाहिए कि वे बड़े विद्वान् सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्पशास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्म-पक्षपात सहित है, उनके बनाये हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं। (परित्याग के योग्य)

● **(प्रश्न)** क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें।

(उत्तर) सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है।......... परमेश्वर कहता है कि जैसे मैं सब मनुष्यों के लिए इस कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो। (यजु. 26/2)

● क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता ? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने, सुनने का शूद्रों के लिये निषेध और द्विजों के लिये विधि करे ?

● जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने, सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता ?

● जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिय बनाये हैं वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किये हैं।

● **(प्रश्न)** क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें ?

(उत्तर)–अवश्य! भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर संग्राम घर में मचा रहे, फिर सुख कहाँ?

● जो स्त्री न पढ़े तो कन्याओं की पाठशाला में अध्यापिका क्यों कर हो सकें तथा राज्यकार्य न्यायाधीशत्वादि, गृहाश्रम का कार्य जो पति को स्त्री और स्त्री को पति प्रसन्न रखना, घर के सब काम स्त्री के अधीन रहना इत्यादि काम बिना विद्या के अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते।

● जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या

न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिये वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प-विद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिये।

● **(प्रश्न)** तुम्हारा मत क्या है ?

(उत्तर) वेद अर्थात् जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा है, उसका हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं। इसलिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत **वेद** है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्य को विशेष बातों की कामना होना बनाना चाहिये।

● संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेद विद्या का दान अति श्रेष्ठ है। इसलिये जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करें।

● राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का वा लड़की किसी के घर में न रहने पावें, किन्तु आचार्य कुल में रहें जब तक समावर्त्तन का समय न आवे, तब तक विवाह न होने पावे।

चतुर्थ समुल्लासः

(विवाह और गृहाश्रम का व्यवहार)

● जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गौत्र की न हो, उस कन्या से विवाह करना उचित है।

● कन्या का नाम **दुहिता** इस कारण से है कि इसका विवाह दूर देश में होने से हितकारी है, निकट रहने में नहीं।

● **(प्रश्न)** विवाह का समय और प्रकार कौन-सा अच्छा है ?

(उत्तर) सोलहवें वर्ष से ले के चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से ले के अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है।

● जिस देश में इसी प्रकार की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य, विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य, विद्याग्रहण रहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है।

● चाहे लड़क लड़की मरणपर्यन्त कुमार रहे परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिये।

● **(प्रश्न)** विवाह करना माता, पिता के अधीन होना चाहिए वा लड़का लड़की के आधीन रहे ?

(उत्तर) लड़का लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता, पिता विवाह करना कभी विचारे तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिये।

● जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न

रहती है उसी कुल में आनन्द, लक्ष्मी और कीर्त्ति निवास करती है और जहाँ विरोध, कलह होता है वहाँ दुःख, दरिद्र और निन्दा निवास करती है।

● जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहे, तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल और शरीर का परिमाणदि यथायोग्य होना चाहिए। जब तक इनका मेल नहीं होता तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता और न बाल्यावस्था में विवाह करने से सुख होता।

● बाल्यावस्था में विवाह से जितना पुरुष का नाश उससे अधिक स्त्री का नाश होता है।

● जब तक इसी प्रकार सब ऋषि-मुनि, राजा-महाराजा आर्य लोग ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ ही के स्वयंवर विवाह करते थे, तब तक इस देश की सदा उन्नति होती थी।

● जब तक इसी प्रकार सब ऋषि-मुनि, राजा-महाराजा आर्य लोग ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ ही के स्वयंवर विवाह करते थे, तब तक इस देश की सदा उन्नति होती थी।

● जब से यह ब्रह्मचर्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता-पिता के आधीन विवाह होने लगा तब से क्रमशः आर्यावर्त्त देश की हानि होती चली आई है।

● **(प्रश्न)** क्या जिसके माता-पिता ब्राह्मण हों वह ब्राह्मणी ब्राह्मण होता है और जिसके माता, पिता अन्य वर्णस्थ हों उनकी सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकता है ?

(उत्तर) हाँ, बहुत से हो गये, होते हैं और होंगे भी।

● जिस मार्ग से इसके पिता, पितामह चले हों, उसी मार्ग में सन्तान भी चलें, परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता, पितामह हों, उन्हीं के मार्ग में चलें और जो पिता, पितामह दुष्ट हों उनके मार्ग में कभी न चलें।

● जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण, कर्म, स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ हो के नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिए।

● जो शूद्र कुल में उत्पन्न हो के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाये, वैसे ही जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ उसके गुण, कर्म, स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जावे, वैसे क्षत्रिय वा वैश्य कुल में उत्पन्न हो के ब्राह्मण वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है अर्थात् चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष व स्त्री हो वह-वह उसी वर्ण में गिनी जावे।

● धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम-उत्तम वर्णों को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावें कि जिस-जिस के योग्य होवे।

● अधर्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे-नीचे वाले वर्णों को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे।

● जैसे पुरुष जिस-जिस वर्ण के योग्य होता है वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिए।

● ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, वैश्य वर्ण का वैश्या और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिये तभी अपने-अपने वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी।

● विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान् और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं।

● क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि व विघ्न नहीं होता।

● पशु-पालनादि का अधिकार वैश्यों ही को होना योग्य है क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार कर सकते हैं।

● शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिये है कि वह विद्या-रहित मूर्ख होने से विज्ञान-सम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता, किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है।

● जो अपनी ही स्त्री से प्रसन्न वा ऋतुगामी होता है वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारी के सदृश है।

● जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है उसमें विद्यायुक्त पुरुष

हो के देवसंज्ञा धरा के आनन्द से क्रीड़ा करते हैं और जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता वहाँ सब क्रिया निष्फल हो जाती है।

● जिस घर वा कुल में स्त्री लोग शोकातुर होकर दुःख पाती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और जिस घर वा कुल में स्त्री लोग आनन्द से उत्साह और प्रसन्नता से भरी हुई रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है।

● यह बात सदा ध्यान रखनी चाहिये कि **पूजा** शब्द का अर्थ सत्कार है और दिन-रात में जब-जब पति-पत्नी प्रथम मिलें वा पृथक् हों तब-तब प्रीतिपूर्वक **नमस्ते** एक-दूसरे से करे।

● सदा प्रिय सत्य दूसरे का हितकारक बोले, अप्रिय सत्य काणे को काणा न बोले। अनृत अर्थात् झूठ, दूसरे को प्रसन्न करने के अर्थ न बोले।

● सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दोष कहना और अपना दोष सुनना, परोक्ष में दूसरों के गुण सदा कहना।

● जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं कहता, सुनता वा कहने वाला तब तक मनुष्य दोषों से छूटकर गुणी नहीं हो सकता।

● जो गुणों में दोष, दोषों में गुण लगाना वह निन्दा और गुणों में गुण, दोषों में दोषों का कथन करना स्तुति कहाती है अर्थात् मिथ्या भाषण का नाम निन्दा और सत्य भाषण का नाम स्तुति है।

● जो शीघ्र बुद्धि धन और हित की वृद्धि करनेहारे शास्त्र और वेद हैं उनको प्रतिदिन सुनें और सुनावें, ब्रह्मचर्याश्रम में पढ़े हों उनका स्त्री-पुरुष प्रतिदिन विचारा और पढ़ाया करें।

● दो यज्ञ अर्थात् **प्रथम वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, सन्ध्योपासना**, योगाभ्यास। **द्वितीय देवयज्ञ**, विद्वानों का संग, सेवा, पवित्रता, दिव्य गुणों का धारण, दातृत्व, विद्या की उन्नति करना है, ये दोनों यज्ञ सायं-प्रातः करने होते हैं।

● इसीलिये दिन और रात्रि के सन्धि में अर्थात् सूर्योदय और अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिये।

● **तीसरा** पितृयज्ञ अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान् ऋषि जो पढ़ने-पढ़ाने

हारे, पितर जो माता-पिता आदि वृद्ध, ज्ञानी और परम योगियों की सेवा करनी। पितृयज्ञ के दो भेद हैं, एक **श्राद्ध** और दूसरा **तर्पण**।

● जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाये उसको **श्रद्धा** और जो श्रद्धा से कर्म किया जाये उसका नाम **श्राद्ध** है। जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता-पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायें उसका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीवितों के लिये है, मृतकों के लिये नहीं।

● जो विद्वान् हैं उन्हीं को **दैव** कहते हैं जो साङ्गोपाङ्ग चार वेदों के जानने वाले हों उनका नाम **ब्रह्मा** और जो उनसे न्यून पढ़े हों, उनका भी नाम देव अर्थात् विद्वान् है। उनके सदृश विदुषी उनकी स्त्री ब्राह्मण **देवी** और उनके तुल्य पुत्र।

● **चौथा** वैश्वदेव–अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने उसमें से खट्टा, लवणान्न और क्षार को छोड़ कर घृत मिष्टयुक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि अलग धर–मन्त्रों से आहुति और भाग करे।

● जब पाँचवां अतिथि सेवा–अतिथि, उसको कहते हैं कि जिसकी कोई तिथि निश्चित नहीं अर्थात् अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, सब के उपकारार्थ सर्वत्र घूमने वाला, पूर्ण विद्वान्, परमयोगी, संन्यासी, गृहस्थ के यहाँ आवे तो उसको प्रथम पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय तीन प्रकार का जल देकर पश्चात् आसन पर सत्कारपूर्वक बिठला कर खानपान आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा-शुश्रुषा करके उनको प्रसन्न करे।

● सत्संग कर उनसे (अतिथियों से) ज्ञान, विज्ञान आदि जिनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होवे ऐसे-ऐसे उपदेशों का श्रवण करे और अपना चाल-चलन भी उनके सदुपदेशानुसार रखे। समय पाके गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सत्कार योग्य हैं।

● परलोक में न माता, न पिता, न पुत्र, न स्त्री, न ज्ञाति सहाय कर सकते हैं। **किन्तु एक धर्म ही सहायक होता है।**

● स्त्री का पूजनीय देव पति और पुरुष की पूजनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है।

● अध्यापक लोग ऐसा यत्न किया करें जिससे विद्यार्थी लोग सत्यवादी, सत्यमानी, सभ्यता, जितेन्द्रिता, सुशीलतादि, शुभ गुणयुक्त शरीर और आत्मा का पूर्ण बल बढ़ा के समग्र वेदादि शास्त्रों में विद्वान् हों, सदा उनकी कुचेष्टा छुड़ाने में और विद्या बढ़ाने में चेष्टा किया करें।

● चारों वर्णों को परस्पर प्रीति, उपकार, सज्जनता, सुख, दुःख, हानि, लाभ में एकमत्य रहकर राज्य और प्रजा की उन्नति में तन, मन, धन का व्यय करते रहना।

● जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहे तो सब गृहाश्रम के अच्छे-अच्छे व्यवहार सब नष्ट-भ्रष्ट हो जायें। कोई किसी की सेवा भी न करे और महा-व्यभिचार बढ़कर सब रोगी, निर्बल और अल्पायु होकर शीघ्र-शीघ्र मर जायें। कोई किसी से भय व लज्जा न करे।

● इसलिये जितना कुछ व्यवहार संसार में है, उसका आधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहाँ से हो सकते?

● जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वह प्रशंसनीय है।

● परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों।

पञ्चम समुल्लासः

(वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम की विधि)

● मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थ होकर, वानप्रस्थ होके, संन्यासी होवें अर्थात् यह अनुक्रम से आश्रम का विधान है।

● जब गृहस्थ शिर के श्वेत केश और त्वचा ढीली हो जाये और लड़के का लड़का भी हो गया हो तब वन में जा के बसे।

● सब ग्राम के आहार और वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़ पुत्रों के पास स्त्री को रख वा अपने साथ लेके वन में निवास करे।

● शरीर के सुख के लिये अति प्रयत्न न करे, किन्तु ब्रह्मचारी रहे अर्थात् अपनी स्त्री साथ हो तथापि उससे विषय चेष्टा कुछ न करे, भूमि में सोवे, अपने आश्रित वा स्वकीय पदार्थों में ममता न करे।

● नाना प्रकार की तपश्चर्या, सत्संग, योगाभ्यास, सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करे। पश्चात् जब संन्यास ग्रहण की इच्छा हो तब स्त्री को पुत्रों के पास भेज देवे, फिर संन्यास ग्रहण करे।

● इस प्रकार वन में आयु का तीसरा भाग अर्थात् पचासवें वर्ष से पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके आयु के चौथे भाग में संगों को छोड़ के परिव्राट् अर्थात् संन्यासी हो जावे।

● जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो उसी दिन घर वा वन से संन्यास ग्रहण कर लेवे।

● जो दुराचार से पृथक् नहीं, जिसको शान्ति नहीं है, जिसका आत्मा

योगी नहीं और जिसका मन शान्त नहीं है वह संन्यास लेके भी प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता।

● जो अविद्या के भीतर खेल रहे अपने को धीर और पण्डित मानते हैं, वे नीच गति को जाने हारे मूढ़, जैसे—अन्धे के पीछे अन्धे दुर्दशा को प्राप्त होते हैं वैसे दुःखों को पाते हैं।

● जो देहधारी है वह सुख-दुःख की प्राप्ति से पृथक् कभी नहीं रह सकता और जो शरीर रहित जीवात्मा मुक्ति में सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ शुद्ध होकर रहता है तव उसको सांसारिक सुख-दुःख प्राप्त नहीं होता।

● लोक में प्रतिष्ठा वा लाभ, धन से भोग, वा मान्य पुत्रादि के मोह से अलग हो के संन्यासी लोग भिक्षुक होकर रात-दिन मोक्ष के साधनों में तत्पर रहते हैं।

● प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति के अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके उसमें यज्ञोपवीत, शिखादि चिह्नों को छोड़, आहवनीयादि पाँच अग्नियों को प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पाँच प्राणों में आरोपण करके ब्राह्मण ब्रह्मवित् घर से निकलकर संन्यासी हो जावे।

● जब संन्यासी मार्ग में चले तब इधर-उधर न देख कर नीचे पृथिवी पर दृष्टि रखकर चले। सदा वस्त्र से छान के जल पिये। निरन्तर सत्य ही बोले, सर्वदा मन से विचार के सत्य का ग्रहण कर असत्य को छोड़ देवे।

● अपने आत्मा और परमात्मा में स्थिर अपेक्षा रहित मद्य-मांसादि वर्जित होकर, आत्मा ही के सहाय से सुखार्थी होकर, इस संसार में धर्म और विद्या के बढ़ाने में उपदेश के लिये सदा विचरता रहे।

● इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, राग-द्वेष को छोड़, सब प्राणियों से निर्वैर वर्त्तकर मोक्ष के लिये सामर्थ्य बढ़ाया करे।

● जब संन्यासी सब भावों में अर्थात् पदार्थों में निःस्पृह, काँक्षा रहित और सब बाहर-भीतर के व्यवहारों में भाव से पवित्र होता है, तभी इस देह में और मरण पाके निरन्तर सुख को प्राप्त होता है।

● इसलिये ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियों को योग्य

है कि प्रयत्न से दश लक्षणयुक्त निम्नलिखित धर्म का सेवन प्रतिदिन करें –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

पहला लक्षण–(धृति) सदा धैर्य रखना।

द्वितीय–(क्षमा) जो कि निन्दा, स्तुति, मानापमान, हानि-लाभ आदि दुःखों में भी सहनशील रहना।

तीसरा–(दम) मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न उठे।

चौथा–(अस्तेय) चोरी-त्याग अर्थात् बिना आज्ञा व छल-कपट, विश्वासघात वा किसी व्यवहार तथा वेद-विरुद्ध उपदेश से पर-पदार्थ का ग्रहण करना चोरी और उसको छोड़ देना साहूकारी कहाती है।

पाँचवां–(शौच) राग-द्वेष पक्षपात छोड़कर भीतर और जल मृत्तिका मार्जन आदि से बाहर की पवित्रता रखनी।

छठा–(इन्द्रिय-निग्रह) अधर्माचरणों में से रोक के इन्द्रियों को धर्म में चलाना।

सातवाँ–(धी) मादक-द्रव्य, बुद्धि-नाशक अन्य पदार्थ, दुष्टों का संग, आलस्य, प्रमाद आदि को छोड़ के श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन, सत्पुरुषों का संग, योगाभ्यास धर्माचरण से बुद्धि को बढ़ाना।

आठवाँ–(विद्या) पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त यथार्थ ज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना, सत्य जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में, जैसा वाणी में, वैसा कर्म में वर्त्तना **विद्या** इससे विपरीत **अविद्या** है।

नवां–(सत्य) जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना, वैसा ही बोलना और वैसा ही करना भी।

दसवां–(अक्रोध) क्रोधादि दोषों को छोड़ के शान्त्यादि गुणों का ग्रहण करना **धर्म का** लक्षण है।

● इस दस लक्षणयुक्त, पक्षपातरहित, न्यायाचरण धर्म का सेवन चारों आश्रम वाले करें और इसी वेदोक्त धर्म ही में आप चलना और

दूसरों को समझाकर चलाना संन्यासियों का विशेष धर्म है।

● संन्यासियों का मुख्य कर्म यही है कि सब गृहस्थादि आश्रमों को सब प्रकार के व्यवहारों का सत्य निश्चय करा अधर्म व्यवहारों से छुड़ा, सब संशयों को छेदन कर सत्य धर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त कराया करें।

● **(प्रश्न)** संन्यासग्रहण की आवश्यकता क्या है ?

(उत्तर) जैसे शरीर में सिर की आवश्यकता होती है वैसे ही आश्रमों में संन्यासाश्रम की आवश्यकता है क्योंकि इसके बिना विद्या, धर्म कभी नहीं बढ़ सकता।

● जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत् का उपकार करता है, वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता, क्योंकि संन्यासी को सत्यविद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का जितना अवकाश मिलता है उतना अन्य आश्रमी को नहीं मिल सकता।

● जो ब्रह्मचर्य से संन्यासी होकर जगत् को सत्य-शिक्षा करके जितना उन्नति कर सकता है, उतनी गृहस्थ वा वानप्रस्थ आश्रम करके संन्यासाश्रमी नहीं कर सकता।

● जो जीव को ब्रह्म बतलाते हैं वे अविद्या-निद्रा में सोते हैं। क्योंकि जीव अल्प, अल्पज्ञ और ब्रह्म सर्वव्यापक सर्वज्ञ है। ब्रह्म नित्य, शुद्ध, बुद्ध मुक्तस्वभावयुक्त है और जीव कभी बद्ध, कभी मुक्त रहता है। ब्रह्म को सर्वव्यापक, सर्वज्ञ होने से भ्रम वा अविद्या कभी नहीं हो सकती और जीव को कभी विद्या और कभी अविद्या होती है, ब्रह्म जन्म-मरण दुःख को कभी नहीं प्राप्त होता और जीव प्राप्त होता है। इसलिये वह उनका उपदेश मिथ्या है।

● सत्योपदेश सब आश्रमी करें और सुनें, परन्तु जितना अवकाश और निष्पक्षपातता संन्यासी को होती है उतनी गृहस्थी को नहीं।

● जब ब्राह्मण वेद-विरुद्ध आचरण करें तब उनका नियन्ता संन्यासी होता है। इसलिये संन्यास का होना उचित है।

● संन्यासी का होना अधिकारियों को उचित है और जो अनधिकारी संन्यासग्रहण करेगा तो आप डूबेगा औरों को भी डुबावेगा।

● जैसे **सम्राट्**, चक्रवर्ती राजा होता है वैसे **परिव्राट्** संन्यासी होता है। प्रत्युत् राजा अपने देश में वा स्वसम्बन्धियों में सत्कार पाता है और संन्यासी सर्वत्र पूजित होता है।

● विद्वान् और राजा की तुल्यता नहीं हो सकती, क्योंकि राजा अपने राज्य ही में मान और सत्कार पाता है और विद्वान् सर्वत्र मान और प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है।

● विद्या पढ़ने, सुशिक्षा लेने और बलवान् होने आदि के लिये **ब्रह्मचर्य**, सब प्रकार के उत्तम व्यवहार सिद्ध करने के अर्थ **गृहस्थ**, विचार, ध्यान और विज्ञान बढ़ाने, तपश्चर्या करने के लिये **वानप्रस्थ** और वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रचार, धर्म व्यवहार का ग्रहण और दुष्ट व्यवहार के त्याग, सत्योपदेश और सबको निःसन्देह करने आदि के लिये **संन्यासाश्रम** है।

● परन्तु जो इस संन्यास के मुख्य धर्म सत्योपदेशादि नहीं करते वे पतित और नरकगामी हैं। इससे संन्यासियों को उचित है कि सत्योपदेश, शंङ्कासमाधान, वेदादि सत्य शास्त्रों का अध्यापन और वेदोक्त धर्म की वृद्धि प्रयत्न से करके सब संसार की उन्नति किया करें।

● जो स्वयं धर्म में चलकर सब संसार में चलाते हैं जिससे आप और सब संसार की इस लोक अर्थात् वर्त्तमान जन्म में परलोक अर्थात् दूसरे जन्म में स्वर्ग अर्थात् सुख का भोग करते-कराते हैं वे ही धर्मात्माजन संन्यासी और महात्मा हैं।

षष्ठ समुल्लासः

(राजधर्म)

● एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये, किन्तु राजा जो सभापति, तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे।

● स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता, श्रीमान् को लूट-खसूट अन्याय से दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा।

● जब तक मनुष्य धार्मिक रहते है तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

● महाविद्वानों को विद्यासभाऽधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्मसभाऽधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और जो उन सब में सर्वोत्तम गुण, कर्म, स्वभावयुक्त महान् पुरुष हो, उसको राजसभा का पतिरूप मान के सब प्रकार से उन्नति करें।

● तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के अधीन सब वर्ते, सब के हितकारक कामों में सम्मति करें। सर्वहित करने के लिए परतन्त्र और धर्मयुक्त कामों में अर्थात् जो-जो निज के काम हैं, उन-उनमें स्वतन्त्र रहें।

● जो सूर्यवत् प्रतापी सबके बाहर और भीतर मनों को अपने तेज से तपाने हारा, जिसको पृथिवी में करड़ी दृष्टि से देखने को कोई भी समर्थ न हो और जो अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य, सोम, धर्म प्रकाशक, धन-वर्द्धक, दुष्टों का बन्धनकर्त्ता, बड़े ऐश्वर्यवाला होवे, वही सभाध्यक्ष, सभेश होने के योग्य होवे।

● जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाये तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो बिना विचारे चलाया जाये तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है।

● बिना दण्ड के सब वर्ण दूषित और मर्यादा छिन्न-भिन्न हो जायें। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जावे।

● जो उस दण्ड का चलाने वाला सत्यवादी, विचार के करनेहारा, बुद्धिमान्, धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि करने में पण्डित राजा है उसी के उस दण्ड का चलाने हारा विद्वान् लोग कहते हैं।

● जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है वह धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि से बढ़ता है और जो विषय में लम्पट, टेढ़ा, ईर्ष्या करनेहारा, क्षुद्र, नीचबुद्धि न्यायाधीश राजा होता है वह दण्ड से ही मारा जाता है।

● मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान और राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान् होने चाहियें।

● न्यून से न्यून दस विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वानों की सभा जैसे व्यवस्था करे, उस धर्म अर्थात् व्यवस्था का कोई भी उल्लंघन न करे।

● इस सभा में चारों वेद, न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान् सभासद् हों।

● जिस सभा में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के जानने वाले तीन सभासद् होके व्यवस्था करें उस सभा की, की हुई व्यवस्था को भी कोई उल्लंघन न करे।

● यदि अकेला सब वेदों का जानने हारा, द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों, लाखों, करोड़ों मिल के जो कुछ व्यवस्था करके उसको कभी न मानना चाहिये।

● इसलिये तीनों अर्थात् विद्यासभा, धर्मसभा और राज्यसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करे। किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों का स्थापन करे।

● सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात् अपने

वश में रख के सदा धर्म में वर्तें और अधर्म से हटे हटाए रहें।

● दुष्ट व्यसन में फंसने से मर जाना अच्छा है क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष है वह अधिक जीयेगा और अधिक-अधिक पाप करके नीचे-नीच गति अर्थात् अधिक-अधिक दुःख को प्राप्त होता जायेगा।

● स्वराज्य, स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रों के जानने वाले, शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो और कुलीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित, सात वा आठ उत्तम धार्मिक, चतुर सचिवान् अर्थात् मन्त्री करे।

● अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, निश्चितबुद्धि, पदार्थों के संग्रह करने में अतिचतुर, सुपरीक्षित मन्त्री करे।

● जितने मनुष्यों में राजकार्य सिद्ध हो सके उतने आलस्यरहित बलवान् और बड़े-बड़े चतुर प्रधान पुरुषों को अधिकारी अर्थात् नौकर करे।

● जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न, चतुर, पवित्र, हाव-भाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् में होने वाली बात को जाननेहारा सब शास्त्रों में विशारद चतुर है, उस दूत को भी रखें।

● अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनय क्रिया अर्थात् जिससे अन्यायरूप दण्ड न होने पावे, राजा के अधीन कोश और राजकार्य तथा सभा के अधीन सब कार्य और दूत के आधीन किसी से मेल वा विरोध करना, अधिकार देवे।

● दूत उसको कहते हैं जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को तोड़-फोड़ देवे। दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओं में फूट पड़े।

● सदा जो राजाओं का वेदप्रचाररूप अक्षय कोश है इसके प्रचार के लिये जो कोई यथावत् ब्रह्मचर्य से वेदादि शास्त्रों को पढ़कर गुरुकुल से आवे उसका सत्कार राजा और सभा यथावत् करें तथा उनका भी जिसके पढ़ाये हुए विद्वान् होवें।

● (राजा) विशेष इस पर ध्यान रखे कि स्त्री, बालक, वृद्ध और आतुर तथा शोकयुक्त पुरुषों पर शस्त्र कभी न चलावे। उनके लड़के बालों को अपने सन्तानवत् पाले और स्त्रियों को ही पाले। उनको अपनी माँ, बहिन और कन्या के समान समझे, कभी विषयासक्ति की दृष्टि

से भी न देखे।

● राजा और राजसभा अलब्ध की प्राप्ति की इच्छा, प्राप्त की प्रयत्न से रक्षा करे, रक्षित को बढ़ावे और बढ़े हुए धन को वेद-विद्या, धर्म का प्रचार, विद्यार्थी, वेदमार्गोपदेशक तथा असमर्थ अनाथों के पालन में लगावे।

● (राजा) कदापि किसी के साथ छल से न वर्ते किन्तु निष्कपट होकर सबसे बर्त्ताव रखे और प्रतिदिन अपनी रक्षा करके शत्रु के किये हुए छल को जान के निवृत्त करे।

● जो राजा मोह से, अविचार से अपने राज्य को दुर्बल करता है, वह राज्य और अपने बन्धुसहित जीवन से पूर्व ही शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

● जैसे प्राणियों के प्राण शरीरों को कृषित करने से क्षीण हो जाते हैं, वैसे ही प्रजाओं को दुर्बल करने से राजाओं के प्राण अर्थात् बलादि बन्धु सहित नष्ट हो जाते हैं।

● इसलिये जैसे राजा और राजसभा राजकार्य की सिद्धि के लिये ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राजकार्य यथावत् सिद्ध हों, जो राजा राज्यपालन में सब प्रकार तत्पर रहता है, उसका सुख सदा बढ़ता है।

● बड़े-बड़े नगरों में एक-एक विचार करने वाली सभा का एक सुन्दर उच्च और विशाल जैसा कि चन्द्रमा है वैसा एक-एक घर बनावें, उसमें बड़े-बड़े विद्यावृद्ध कि जिन्होंने विद्या से सब प्रकार की परीक्षा की हो वे बैठकर विचार किया करें। जिन नियमों से राजा और प्रजा की उन्नति हो वैसे-वैसे नियम और विद्या प्रकाशित किया करें।

● जो राजपुरुष अन्याय से वादी प्रतिवादी से गुप्त धन लेके पक्षपात से अन्याय करे उनका सर्वस्वहरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देश में रखे कि जहाँ से पुनः लौटकर न आ सके।

● जब पिछली प्रहर रात्री रहे तब (राजा) उठ शौच और सावधान होकर परमेश्वर का ध्यान, अग्निहोत्र, धार्मिक विद्वानों का सत्कार और भोजन करके भीतर सभा में प्रवेश करे।

● जिस राजा के गूढ़ विचार को अन्य जन मिलकर नहीं जान सकते अर्थात् जिसका विचार गम्भीर, शुद्ध, परोपकारार्थ, सदा गुप्त रहे

वह धनहीन भी राजा सब पृथिवि के राज्य करने में समर्थ होता है। इसलिये अपने मन से एक भी काम न करे कि जब तक सभासदों की अनुमति न हो।

● तीन प्रकार के मार्ग अर्थात् एक स्थल (भूमि) में, दूसरा जल (समुद्र वा नदियों) में, तीसरा आकाश मार्गों को शुद्ध बनाकर भूमि मार्ग में रथ, अश्व, हाथी, जल में नौका और आकाश में विमानादि यानों से जावे और पैदल, रथ, हाथी, घोड़े, शस्त्र और अस्त्र खान-पानादि सामग्री को यथावत् साथ ले बलयुक्त पूर्ण करके किसी निमित्त को प्रसिद्ध करके शत्रु के नगर के समीप धीरे-धीरे जावे।

● प्रजा के धनाढ्य, आरोग्य, खान-पान आदि से सम्पन्न रहने पर राजा की बड़ी उन्नति होती है। प्रजा को अपने सन्तान के सदृश सुख देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राजपुरुषों को जाने।

● यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है, जो प्रजा न हो तो राजा किसका? और राजा न हो तो प्रजा किस की कहावे ? दोनों अपने-अपने काम में स्वतन्त्र और मिले हुए प्रीतियुक्त काम में परतन्त्र रहें।

● प्रजा की साधारण सम्मति के विरुद्ध राजा वा राजपुरुष न हों, राजा की आज्ञा के विरुद्ध राजपुरुष वा प्रजा न चले।

● धार्मिक मनुष्य को योग्य है कि सभा में कभी प्रवेश न करे और जो प्रवेश किया हो तो सत्य ही बोले। जो कोई सभा में अन्याय होते हुए देखकर मौन रहे अथवा सत्य न्याय के विरुद्ध बोले, वह महापापी होता है।

● जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य, सब सभासदों के देखते हुए मारा जाता है उस सभा में सब मृतक के समान हैं, जानों उसमें कोई भी नहीं जीता।

● मरा हुआ धर्म मारने वाले का नाश और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है।

● इस संसार में एक धर्म ही सुहृद् है जो मृत्यु के पश्चात् भी साथ चलता है और सब पदार्थ वा संगी शरीर के नाश के साथ ही नाश को प्राप्त होते हैं अर्थात् सब का संग छूट जाता है परन्तु धर्म

का संग कभी नहीं छूटता।

● जिस सभा में निन्दा के योग्य की निन्दा, स्तुति के योग्य की स्तुति, दण्ड के योग्य को दण्ड और मान्य के योग्य को मान्य होता है वहाँ राजा और सब सभासद् पाप से रहित और पवित्र हो जाते हैं।

● सब वर्णों में धार्मिक, विद्वान् निष्कपटी, सब प्रकार धर्म को जानने वाले लोभरहित, सत्यवादियों को न्यायव्यवस्था में साक्षी करे, इससे विपरीतों को कभी न करे।

● जो साक्षी सत्य बोलें, वे धर्महीन और दण्ड के योग्य न होवे और जो साक्षी मिथ्या बोलें, वे यथायोग्य दण्डनीय हों।

● जो साक्षी सत्य बोलता है, वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म और उत्तम लोकान्तरों में जन्म को प्राप्त होके सुख भोगता है, इस जन्म वा परजन्म में उत्तम कीर्त्ति को प्राप्त करता है, क्योंकि जो यह वाणी है वही वेदों में सत्कार और तिरस्कार का कारण लिखी है।

● सत्य बोलने से साक्षी पवित्र होता और सत्य ही बोलने से धर्म बढ़ता है, इससे सब वर्णों में साक्षियों को सत्य ही बोलना योग्य है।

● हे कल्याण की इच्छा करने हारे पुरुष ! जो तू **मैं अकेला** हूँ ऐसा अपने आत्मा में जानकर मिथ्या बोलता है सो ठीक नहीं है, किन्तु जो दूसरा तेरे हृदय में अन्तर्यामीरूप से परमेश्वर पुण्य-पाप का देखने वाला मुनि स्थित है उस परमात्मा से डरकर सदा सत्य बोला कर।

● जो लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और बालकपन से साक्षी देवे वह सब मिथ्या समझी जावे।

● (जो राजा) दण्ड देने योग्य को छोड़ देता और जिसको दण्ड देना न चाहिये उसको दण्ड देता है वह जीता हुआ बड़ी निन्दा को और मरे पीछे बड़े दुःख को प्राप्त होता है।

● चाहे पिता, आचार्य, मित्र, स्त्री, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो जो स्वधर्म में स्थित नहीं रहता वह राजा का अदण्ड्य नहीं होना अर्थात् जब राजा न्यायासन पर बैठ न्याय कर तब किसी का पक्षपात न करे किन्तु यथोचित दण्ड देवे।

● चाहे गुरु हो, चाहे पुत्रादि बालक हो, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण और चाहे बहुत शास्त्रों का श्रोता क्यों न हो, जो धर्म

को छोड़ अधर्म में वर्त्तमान, दूसरे को बिना अपराध मारने वाले हैं, उनको बिना विचारे मार डालना अर्थात् मार के पश्चात् विचार करना चाहिये।

● दुष्ट पुरुषों के मारने में हन्ता को पाप नहीं होता चाहे प्रसिद्ध मारे, चाहे अप्रसिद्ध।

● जिस राजा के राज्य में न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचन का बोलनेहारा, न साहसिक डाकू और दण्डघ्न अर्थात् राजा की आज्ञा का भङ्ग करने वाला है, वह राजा अतीव श्रेष्ठ है।

● जो स्त्री अपनी जाति गुण के घमण्ड से पति को छोड़ व्यभिचार कर उसको बहुत-बहुत स्त्री और पुरुषों के सामने जीती हुई कुत्तों से राजा कटवा कर मरवा डाले।

● उसी प्रकार अपनी स्त्री को छोड़ के परस्त्री वा वेश्यागमन करे, उस पापी को लोहे के पलङ्ग को अग्नि से तपा के लाल कर उस पर सुला के जीते को बहुत पुरुषों के सम्मुख भस्म कर देवे।

● एक पुरुष को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेंगे और बुरे काम को छोड़कर धर्म मार्ग में स्थित होंगे।

● **(प्रश्न)** संस्कृत विद्या में पूरी-पूरी राजनीति है वा अधूरी?

(उत्तर) पूरी है, क्योंकि जो-जो भूगोल में राजनीति चली और चलेगी वह सब संस्कृत विद्या से ली है।

● **यथा राजा तथा प्रजा** जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है। इसलिये राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें, किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्त्तकर सब के सुधार का दृष्टान्त बनें।

● **वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम्** (यजु. 18/29) यह यजुर्वेद का वचन है। हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा हम उसके किंकर भृत्यवत् हैं। वह कृपा करके अपनी सृष्टि में हम को राज्याधिकारी करे और हमारे साथ से अपने सत्य न्याय की प्रवृत्ति करावे।

सप्तम समुल्लासः

(वेदेश्वर विषय)

● जो सब दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव, विद्यायुक्त और जिसमें पृथिवी सूर्य्यादि लोक स्थित हैं और जो आकाश के समान व्यापक, सब देशों का देव परमेश्वर है, उसको जो मनुष्य न जानते, न मानते और उसका ध्यान नहीं करते वे नास्तिक, मन्दमति सदा दुःखसागर में डूबे ही रहते हैं, इसलिये सर्वदा उसी को जानकर सब मनुष्य सुखी होते हैं।

● (प्रश्न) वेद में ईश्वर अनेक हैं, इस बात को तुम मानते हो वा नहीं?

(उत्तर) नहीं मानते, क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा, जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों। किन्तु यह तो लिखा है कि **ईश्वर एक** है।

● (प्रश्न) वेदों में जो अनेक देवता लिखे हैं उसका क्या अभिप्राय है?

(उत्तर) देवता दिव्यगुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं जैसी कि पृथिवी, परन्तु इसको कहीं ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है।

● हे मनुष्य ! जो कुछ इस संसार में जगत् है उस सबमें व्याप्त होकर नियन्ता है वह **ईश्वर** कहाता है, उससे डरकर तू अन्याय से किसी के धन की आकांक्षा मत कर। उस अन्याय के त्याग और न्यायाचरणरूप धर्म से अपने आत्मा से आनन्द को भोग।

● हे मनुष्यो ! जो सृष्टि के पूर्व सब सूर्य्यादि तेज वाले लोकों

का उत्पत्ति स्थान, आधार और जो कुछ उत्पन्न हुआ था, है और होगा उसका स्वामी था, है और होगा, वह पृथिवी से लेके सूर्य्यलोक पर्यन्त सृष्टि को बना के धारण कर रहा है। उस सुखस्वरूप परमात्मा ही की भक्ति जैसे हम करें, वैसे तुम लोग भी करो।

● **(प्रश्न)** ईश्वर व्यापक है वा किसी देशविशेष में रहता है?

(उत्तर) व्यापक है, क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब का स्रष्टा, सब का धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता नहीं हो सकता।

● **(प्रश्न)** परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है वा नहीं ?

(उत्तर)–है। जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्ध होकर दुःखों को प्राप्त न हों, वही दया कहाती है जो पराये दुःखों का छुड़ाना।

● **(प्रश्न)** ईश्वर साकार है वा निराकार !

(उत्तर) निराकार, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक नहीं हो सकता। जब व्यापक न होता हो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते क्योंकि परिमित वस्तु में गुण, कर्म, स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकर हो तो उसके नाक, कान, आँख आदि अवयवों का बनानेहारा दूसरा होना चाहिये। जो कोई यहाँ ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व निराकार था।

● **(प्रश्न)** ईश्वर सर्व शक्तिमान् है वा नहीं?

(उत्तर) है, परन्तु जैसा तुम शक्तिमान् शब्द का अर्थ जानते हो वैसा नहीं। किन्तु सर्वशक्तिमान् शब्द का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य-पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किञ्चित् भी किसी की सहायता नहीं लेता अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।

● **(प्रश्न)** परमेश्वर सादि है वा अनादि ?

(उत्तर) अनादि अर्थात् जिसका आदि कोई कारण वा समय न हो उसको अनादि कहते हैं।

● **(प्रश्न)** परमेश्वर क्या चाहता है ?

(उत्तर) भलाई और सब के लिये सुख चाहता है परन्तु स्वतन्त्रता के साथ किसी को बिना पाप किये पराधीन नहीं करता।

● **(प्रश्न)** परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये वा नहीं ?

(उत्तर) करनी चाहिये। .... स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण-कर्म, स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उनका साक्षात्कार होना।

● वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सबका अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है यह सगुण स्तुति (है)।

● वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं होता, नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता, जिसमें क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि जिस-जिस राग-द्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है।

● वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे और जो केवल भाँड के समान परमेश्वर के गुणकीर्त्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता, उसका स्तुति करना व्यर्थ है।

● (एक प्रार्थना) है सुख के दाता, स्वप्रकाशस्वरूप, सबको जानने हारे परमात्मन् ! आप हमको श्रेष्ठमार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये और जो हम में कुटिल पापाचरणरूप मार्ग है, उससे पृथक् कीजिये। हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुत-सी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र करें।

● ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उसको स्वीकार करता है कि जैसे—हे **परमेश्वर ! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझको सबसे बड़ा, मेरी ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जायें** इत्यादि।......ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते-करते कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा—हे **परमेश्वर ! आप हमको रोटी बनाकर खिलाइये, मकान में झाड़ू लगाइये, वस्त्र धो दीजिये और खेती-बाड़ी भी कीजिये।**

● परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जब तक जीवे तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे, आलसी कभी न हो।

● देखो ! सृष्टि के बीच में जितने प्राणी हैं अथवा अप्राणी वे सब अपने-अपने कर्म और यत्न करते ही रहते हैं। जैसे—पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि सदा बढ़ते-घटते रहते हैं। वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है।

● जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय दूसरा भी करता है वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है..........।

● **उपासना** शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है..........जो उपासना का आरम्भ करना चाहे उसके लिये यही आरम्भ है कि वह किसी से वैर न रखे, सर्वदा सबसे प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले, चोरी न करे, सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो और निराभिमानी हो, अभिमान कभी न करे।

● राग, द्वेष छोड़ भीतर और जलादि से बाहर पवित्र रहे, धर्म से पुरुषार्थ करने से लाभ में न प्रसन्नता और हानि में न अप्रसन्नता करे। प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे। सदा दुःख सुखों का सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करे, अधर्म का नहीं। सर्वदा सत्य शास्त्रों को पढ़े-पढ़ावे, सत्पुरुषों का संग करे और ओ३म् इस एक परमात्मा के नाम का अर्थ विचार कर नित्य प्रति जप किया करे। अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे।

● जब उपासना करना चाहें तब एकान्त, शुद्ध देश में जाकर,

आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभि प्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होता है।

● जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये।

● जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है। क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रखे हैं उसका गुण भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।

● परमेश्वर के हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथ से सब को रचना, ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक होने से सब से अधिक वेगवान, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सबको यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं, तथापि सबकी बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं, परन्तु सब जगत् को जानता है।

● जो अविद्यादि क्लेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है, वह सब जीवों से विशेष ईश्वर कहाता है।

● **(प्रश्न)** ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि **अज एकपात्** (यजु. 33-53), **सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्** (यजु. 40-8) ये यजुर्वेद के वचन हैं। इत्यादि वचनों से सिद्ध है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता।

● **(प्रश्न)** श्री कृष्ण जी कहते हैं कि जब-जब धर्म का लोप होता है तब-तब मैं शरीर धारण करता हूँ। (भ.गी. 4-7) **(उत्तर)** यह बात वेद-विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं और ऐसा हो सकता है कि श्री कृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-युग में जन्म

लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि **परोपकाराय सतां विभूतयः** परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है तथापि इससे श्री कृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

● **(प्रश्न)** जो ऐसा है तो संसार में चौबीस ईश्वर के अवतार होते हैं और इनको अवतार क्यों मानते हैं?

(उत्तर) वेदार्थ के न जानने, सम्प्रदायी लोगों के बहकाने और अपने आप अविद्वान् होने से भ्रमजाल में फंस के ऐसी-ऐसी अप्रमाणिक बातें करते और मानते हैं।

● **(प्रश्न)** जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस, रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके ?

(उत्तर) प्रथम तो जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है। जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है।

● भला इस अनन्त गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमात्मा की एक क्षुद्र जीव के मारने के लिये जन्ममरणयुक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है ? और जो कोई कहे कि भक्तजनों के उद्धार करने के लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं, क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है।

● क्या ईश्वर के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् को बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस रावणादि का वध और गोवर्धन आदि का उठाना बड़े कर्म हैं ? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो **न भूतो न भविष्यति** ईश्वर के सदृश कोई न है, न होगा।

● युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया वा मुट्ठी में धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता, क्योंकि आकाश अनन्त और सबमें व्यापक

है। इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना-जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वहाँ हो सकता है जहाँ परमेश्वर न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया ? और बाहर नहीं है जो भीतर से निकले ? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्याहीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा। इसलिये परमेश्वर का जाना-आना, जन्म-मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता।

- (प्रश्न) ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय और सब मनुष्य महापापी हो जायें।

- (प्रश्न) जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र ?

(उत्तर) अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है।

- (प्रश्न) परमेश्वर सगुण है वा निर्गुण ?

(उत्तर) दोनों प्रकार है।

- (प्रश्न) भला एक मियान में दो तलवार कभी रह सकती हैं? एक पदार्थ में सगुणता और निगुर्णता कैसे रह सकती हैं ?

(उत्तर) ....जो गुणों से सहित वह **सगुण** और जो गुणों से रहित है वह **निर्गुण** कहाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान, बलादि गुणों से सहित होने से **सगुण** और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से **निर्गुण** कहाता है।

- जिस परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकाशित हुए हैं, वह कौन-सा देव है ?

उत्तर—जो सबको उत्पन्न करके धारण कर रहा है वह परमात्मा है। जो स्वयम्भू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है वह सनातन जीवरूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है।

● **(प्रश्न)** परमेश्वर को आप निराकार मानते हो वा साकार ?

(उत्तर) निराकार मानते हैं।

● **(प्रश्न)** जब (परमेश्वर) निराकार है तो वेदविद्या का उपदेश बिना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हो सका होगा ? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में ताल्वादि स्थान, जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होनी चाहिये।

(उत्तर) परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेदविद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा व्याप्ति से वेदविद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है।.........जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तो अपनी अखिल वेद-विद्या का उपदेश जीवस्थ स्वरूप से जीवात्मा में प्रकाशित कर देता है।

● **(प्रश्न)** (ईश्वर ने) किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया?

(उत्तर) प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया।

● **(प्रश्न)** उन चारों ही में वेदों का प्रकाश किया, अन्य में नहीं, इससे ईश्वर पक्षपाती होता है।

(उत्तर) वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रात्मा थे, अन्य उनके सदृश नहीं थे। इसलिये पवित्र विद्या का प्रकाश उन्हीं में किया।

● **(प्रश्न)** किसी देशभाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में क्यों किया?

(उत्तर) जो किसी देश भाषा में प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता, क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाश करता उनको सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने-पढ़ाने की होती।

● **(प्रश्न)** वेद की ईश्वर से होने की आवश्यकता कुछ भी नहीं, क्योंकि मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लेंगे।

(उत्तर) कभी नहीं बना सकते, क्योकि बिना कारण के कार्योत्पत्ति का होना असम्भव है। जैसे—जङ्गली मनुष्य सृष्टि को देखकर भी विद्वान्

नहीं होते और जब उनको कोई शिक्षक मिल जाये तो विद्वान् हो जाते हैं और अब भी किसी से पढ़े बिना कोई भी विद्वान् नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन आदिसृष्टि के ऋषियों को वेदविद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते।

● **(प्रश्न)** वेद किन ग्रन्थों का नाम है ?

(उत्तर) **ऋक्, यजुः, साम** और **अथर्व** मन्त्रसंहिताओं का, अन्य का नहीं।

● वेदों में किसी का इतिहास नहीं, किन्तु जिस-जिस शब्द से विद्या का बोध होवे उस-उस शब्द का प्रयोग किया है। किसी विशेष मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं।

● **(प्रश्न)** वेद नित्य हैं वा अनित्य?

(उत्तर) नित्य हैं, क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञान आदि गुण भी नित्य हैं।

● **(प्रश्न)** क्या यह पुस्तक भी नित्य है ?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि पुस्तक तो पत्रों और स्याही का बना है, वह नित्य कैसे हो सकता है ? किन्तु जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध हैं, वे नित्य हैं ?

● वेद को पढ़ने के पश्चात् व्याकरण, निरुक्त और छन्द आदि ग्रन्थ ऋषि-मुनियों ने विद्याओं के प्रकाश के लिये किये हैं। जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके।

● इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं। इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत **वेद** अर्थात् **जो कुछ वेदों में कहा है, हम उसको मानते हैं।**

अष्टम समुल्लासः

(जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय)

● जिस परमात्मा की रचना से ये सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं जिससे जीवते और जिसमें प्रलय को प्राप्त होते हैं, वह ब्रह्म है, उसके जानने की इच्छा करो।

● **(प्रश्न)** यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ वा अन्य से?

(उत्तर) निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है, परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है।

● **(प्रश्न)** क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं कीं ?

(उत्तर) नहीं, वह अनादि है।

● **(प्रश्न)** अनादि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं ?

(उत्तर) ईश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीन अनादि हैं।

● प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं। इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता है और उसमें परमात्मा न फंसता और न उसका भोग करता है।

● (सत्व) शुद्ध, (रज) मध्य, (तमः) **जाड्य अर्थात्** जड़ता तीन वस्तु मिलकर जो संघात है, उसका नाम **प्रकृति है।**

● **(प्रश्न)** जगत् के कारण कितने होते हैं ?

(उत्तर) तीन। एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। ....एक-एक सृष्टि का कारण से बनाने, धारने और प्रलय करने

तथा सबकी व्यवस्था रखने वाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा। दूसरा–परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्यान्तर करने वाला साधारण निमित्त कारण जीव। उपादान कारण–प्रकृति, परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। वह जड़ होने से आपसे आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है।

● **(प्रश्न)** नवीन वेदान्ती लोग केवल परमेश्वर को ही जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण मानते हैं।

(उत्तर) जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादान कारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी, अवस्थान्तरयुक्त विकारी हो जावे।..........

● **(प्रश्न)** जगत् के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है ?

(उत्तर) नहीं बनाने में क्या प्रयोजन है ?

● **(प्रश्न)** जो न बनाता तो आनन्द में बना रहता और जीवों को भी सुख-दुःख प्राप्त न होता।

(उत्तर) यह आलसी और दरिद्र लोगों की बातें हैं, पुरुषार्थी की नहीं।..........तो जो ईश्वर में जगत् की रचना करने का विज्ञान, बल और क्रिया है उसका क्या प्रयोजन, बिना जगत् की उत्पत्ति करने के? दूसरा कुछ भी न कह सकोगे। और परमात्मा के न्याय, धारण, दया आदि गुण भी तभी सार्थक हो सकते हैं जब जगत् को बनावे। उसका अनन्त सामर्थ्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने ही से सफल है। जैसे नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।

● **(प्रश्न)** जब परमेश्वर सर्वशक्तिमान है तो वह कारण और जीव को भी उत्पन्न कर सकती है। जो नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमान् भी नहीं रह सकता।

(उत्तर) सर्वशक्तिमान शब्द का अर्थ पूर्व लिख आये हैं (प्रथम तथा सप्तम समुल्लास में) परन्तु क्या सर्वशक्तिमान् वह कहाता है जो असम्भव बात को भी कर सके ?.......... जो स्वाभाविक नियम अर्थात्

जैसा अग्नि उष्ण, जल शीतल और पृथिव्यादि सब जड़ों को विपरीत गुणवाले ईश्वर भी नहीं कर सकता।........और ईश्वर के नियम सत्य और पूरे हैं। इसलिये परिवर्तन नहीं कर सकता। इसलिये सर्वशक्तिमान् का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा बिना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है।

● **(प्रश्न)** ईश्वर साकार है वा निराकार ? जो निराकार है तो बिना हाथ आदि साधनों के जगत् को न बना सकेगा और जो साकार है तो कोई दोष नहीं आता

(उत्तर) ईश्वर निराकार है, जो साकार अर्थात् शरीरयुक्त है वह ईश्वर ही नहीं। क्योंकि वह परिमित शक्तियुक्त, देश, काल, वस्तुओं में परिछिन्न, क्षुधा, तृषा, छेदन, भेदन, शीतोष्ण, ज्वर, पीड़ादि सहित होवे।

● **(प्रश्न)** जैसे मनुष्यादि के माँ-पिता का साकार उनका सन्तान भी साकार होता है, जो ये निराकार होते तो इनके लड़के भी निराकार होते, वैसे परमेश्वर निराकार हो तो उनका बनाया जगत् भी निराकार होना चाहिये।

(उत्तर) यह तुम्हारा प्रश्न लड़के के समान है, क्योंकि हम अभी कह चुके हैं कि परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है।

● **(प्रश्न)** इस जगत् का कर्त्ता न था, न है और न होगा किन्तु अनादिकाल से यह जैसा का वैसा बना है। न कभी इसकी उत्पत्ति हुई, न कभी विनाश होगा।

(उत्तर) बिना कर्त्ता के कोई भी क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ नहीं बन सकता। जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग विशेष से रचना दिखती है, वे अनादि कभी नहीं हो सकते।

● **(प्रश्न)** अनादि ईश्वर कोई नहीं किन्तु जो योगाभ्यास से अणिमादि ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सर्वज्ञादि गुणयुक्त केवल ज्ञानी होता है वही जीव परमेश्वर कहाता है।

(उत्तर) जो अनादि ईश्वर जगत् का स्रष्टा न हो तो साधनों से सिद्ध होने वाले जीवों का आधार जीवनरूप जगत्, शरीर और इन्द्रियों

के गोलक कैसे बनते ?.............जीव चाहे जैसा साधन कर सिद्ध होवे तो भी ईश्वर की जो स्वयं सनातन अनादि सिद्धि है जिसमें अनन्त सिद्धि है, उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता।

● **(प्रश्न)** कल्प कल्पान्तर में ईश्वर सृष्टि विलक्षण-विलक्षण बनाता है अथवा एक सी?

(उत्तर) जैसी कि अब है वैसी पहले थी और आगे होगी, भेद नहीं करता।

● परमेश्वर जैसे पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि को बनाता था, वैसे ही उसने अब बनाये हैं और आगे भी वैसे ही बनावेगा। इसलिये परमेश्वर के काम बिना भूल-चूक के होने से सदा एक से ही हुआ करते हैं।

● कभी असत का भाव वर्तमान और सत का अभाव अवर्त्तमान नहीं होता। इन दोनों का निर्णय तत्त्वदर्शी लोगों ने जाना है, अन्य पक्षपाती, आग्रही, मलीनात्मा, अविद्वान् लोग इस बात को सहज में कैसे जान सकते हैं? क्योंकि जो मनुष्य विद्वान्, सत्सङ्गी होकर पूरा विचार नहीं करता वह सदा भ्रमजाल में पड़ा रहता है।

● धन्य वे पुरुष हैं कि जो सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानते हैं और जानने के लिये परिश्रम करते हैं, जानकर औरों को निष्कपटता से जनाते हैं। इससे जो कोई कारण के बिना सृष्टि मानता है वह कुछ भी नहीं जानता।

● परन्तु आदिसृष्टि मैथुनी नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री-पुरुषों के शरीर परमात्मा बनाकर उनमें जीवों का संयोग कर देता है तदनन्तर मैथुनी-सृष्टि चलती है।

● देखो ! शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान् लोग आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत, फेफड़ा, पंखा, कला का स्थापन, रुधिर-शोधन, प्रचालन, विद्युत का स्थापन, जीविका संयोजन, शिरोरूप मूल रचना, लोम, नखादि का स्थापन, आँख की अतीव सूक्ष्म, शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन,

जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिये स्थान विशेषों का निर्माण, सब धातु का विभागकरण, कला-कौशलस्थापनादि अद्भुत सृष्टि को बिना परमेश्वर के कौन-कर सकता है?

● इसके बिना नाना प्रकार के रत्न धातु से जड़ित भूमि, विविध प्रकार वट वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना, असंख्य, हरित, श्वेत, पीत, कृष्ण, चित्र, मध्यरूपों से युक्त, पत्र-पुष्प, फल, मूल निर्माण मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस, सुगन्धादि युक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्द मूलादि रचन, अनेकानेक करोड़ों भूगोल, सूर्य, चन्द्रादि लोकनिर्माण, धारण, भ्रामण, नियमों में रखना आदि परमेश्वर के बिना कोई भी नहीं कर सकता।

● जब कोई किसी पदार्थ को देखता है तो दो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है एक जैसा वह पदार्थ है तो दूसरा उसमें रचना देखकर बनाने वाले का ज्ञान है। जैसा किसी पुरुष ने सुन्दर आभूषण जंगल में पाया, देखा तो विदित हुआ कि वह सुवर्ण का है और किसी बुद्धिमान् कारीगर ने बनाया है। इसी प्रकार यह नाना प्रकार सृष्टि में विविध रचना बनाने वाले परमेश्वर को सिद्ध करती है।

● **(प्रश्न)** मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई वा पृथिवी आदि की ?

(उत्तर) पृथिवी आदि की। क्योंकि पृथिव्यादि के बिना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता।

● **(प्रश्न)** सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य किये थे वा क्या?

(उत्तर) अनेक, क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरी सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देती है क्योंकि **मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त** यह यजुर्वेद और उसके ब्राह्मण में लिखा है। इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों, सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए और सृष्टि में देखने से भी निश्चय होता है कि मनुष्य अनेक माँ-पिता के सन्तान हैं।

● **(प्रश्न)** आदिसृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्ययुवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई अथवा तीनों में ?

(उत्तर) युवावस्था में। क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है।

● **(प्रश्न)** कभी सृष्टि का आरम्भ है वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं, जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है इसी प्रकार सृष्टि के पूर्वप्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि, अनादि काल से चक्र चला आता है। इसका आदि वा अन्त नहीं।

● जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है। क्योंकि जैसे–परमात्मा, जीव, जगत् का कारण, तीन स्वरूप से अनादि हैं, वैसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और वर्तमान प्रवाह से अनादि है।

● जैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं वैसे ही उसके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि हैं। जैसे कभी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं, इसी प्रकार उसके कर्त्तव्य और कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं।

● **(प्रश्न)** ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंहादि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु, किन्हीं को वृक्षादि, कृमि, कीट, पतङ्गादि आदि जन्म दिये हैं, इससे परमात्मा में पक्षपात आता है।

(उत्तर) पक्षपात नहीं आता, क्योंकि उन जीवों के पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मानुसार व्यवस्था करने से जो कर्म के बिना जन्म देता तो पक्षपात आता।

● **(प्रश्न)** मनुष्यों की आदिसृष्टि किस स्थल में हुई ?

● (उत्तर) **त्रिविष्टप** अर्थात् जिसको **तिब्बत** कहते हैं।

● **(प्रश्न)** आदिसृष्टि में एक जाति थी वा अनेक ?

(उत्तर) एक मनुष्य जाति थी पश्चात्..............श्रेष्ठों का नाम आर्य्य, विद्वान् देव और दुष्टों के दस्यु अर्थात् डाकू , मूर्ख नाम होने

से आर्य्य और दस्यु दो नाम हुए।.........आर्य्यों में पूर्वोक्त प्रकार से **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य** और **शूद्र चार भेद** हुए। द्विज विद्वानों का नाम आर्य और मूर्खों का नाम **शूद्र** और **अनार्य** अर्थात् अनाड़ी नाम हुआ।

● **(प्रश्न)** फिर वे (आर्य) यहाँ कैसे आये ?

(उत्तर) जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव, अविद्वान् जो असुर, उनमें सदा लड़ाई-बखेड़ा हुआ किया। जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि के खण्ड को जानकर यहीं आकर बसे। इसी देश का नाम **आर्य्यवर्त्त** हुआ।

● **(प्रश्न)** आर्य्यावर्त्त की अवधि कहाँ तक है ?

(उत्तर) उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र तथा सरस्वती, पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में दृषद्वती जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकल के बंगाल के आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है जिसको **ब्रह्मपुत्रा** कहते हैं और जो उत्तर के पहाड़ों से निकल के दक्षिण के समुद्र की खाड़ी में आकर मिली है। हिमालय की मध्यरेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं, इन सबको **आर्यावर्त्त** इसीलिये कहते हैं कि यह आर्यावर्त्त देव अर्थात् विद्वानों ने बनाया और आर्यजनों के निवास करने से **आर्य्यावर्त्त** कहाया है।

● **(प्रश्न)** प्रथम इस देश का नाम क्या था और इसमें कौन बसते थे?

(उत्तर) इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्य्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। क्योंकि आर्य्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सूधे इसी देश में आकर बसे थे।

● **(प्रश्न)** कोई कहते हैं कि ये लोग ईरान से आये, इसी से इन लोगों का नाम **आर्य्य** हुआ है।

(उत्तर) यह सर्वथा झूठ है।.........आर्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त पुरुषों का और इनसे विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम

आर्य और शूद्र का नाम अनार्य अर्थात् अनाड़ी है। जब वेद ऐसे कहता है तो दूसरे विदेशियों के कपोल-कल्पित को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मान सकते।.......किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहाँ के जंगलियों को लड़कर, जय पाके, निकाल इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है?

● इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पाण्डव तक सर्वभूगोल में आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा-थोड़ा प्रचार आर्य्यावर्त्त से भिन्न देशों में भी रहता था।

● अब अभाग्योदय से आर्य्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्य्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है।

● कोई जितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।

● भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिये जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं, उसी का मान्य करना भद्रपुरुषों का काम है।

● **(प्रश्न)** जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ?

(उत्तर) एक अर्ब, छानवें करोड़, कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुये हैं।

● **(प्रश्न)** इतने-इतने बड़े भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा?

(उत्तर) जैसे अनन्त आकाश के सामने बड़े-बड़े भूगोल कुछ

भी अर्थात् समुद्र से आगे जल के छोटे कण के तुल्य भी नहीं हैं, वैसे अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक एक परमाणु के तुल्य भी नहीं कह सकते। वह बाहर-भीतर सर्वत्र व्यापक अर्थात् **विभुः प्रजासु** यह यजुर्वेद (32-8) का वचन है—वह परमात्मा सब प्रजाओं में व्यापक होकर सबको धारण कर रहा है। जो वह ईसाई, मुसलमान, पुराणियों के कथनानुसार विभु न होता तो इस सब सृष्टि का धारण कभी नहीं कर सकता।

● **(प्रश्न)** पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर हैं?

(उत्तर) घूमते हैं।

(प्रश्न) कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथिवी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं कि पृथिवी घूमती है सूर्य नहीं घूमता इसमें सत्य क्या माना जाय ?

(उत्तर) ये दोनों आधे झूठे हैं, क्योंकि वेद में लिखा है कि **वह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है।**

● **(प्रश्न)** सूर्य, चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं ? और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं ?

(उत्तर) ये सब भूगोल लोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती हैं, क्योंकि, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका **वसु** नाम इसलिये है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा बसती है और ये ही सबको बसाते हैं।

● **(प्रश्न)** जैसे इस देश में मनुष्यादि सृष्टि की आकृति अवयव हैं वैसे ही अन्य लोकों में भी होगी वा विपरीत?

(उत्तर) कुछ-कुछ आकृति में भेद होने सम्भव है। जैसे इस देश में चीन, हबशी और आर्य्यावर्त्त, यूरोप में अवयव और रंग आकृति का भी थोड़ा-थोड़ा भेद होता है।

● परमात्मा ने जिस प्रकार का सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, अन्तरिक्ष ओर तत्रस्थ सुख विशेष पदार्थ पूर्वकल्प में रचे थे वैसे ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टि में रचे हैं तथा सब लोकलोकान्तरों में भी बनाये गये

हैं। भेद किञ्चित्मात्र नहीं होता।

● **(प्रश्न)** जिन वेदों का इस लोक में प्रकाश है उन्हीं का उन लोकों में भी प्रकाश है वा नहीं ?

(उत्तर) उन्हीं का है। जैसे एक राजा की राजव्यवस्था नीति सब देशों में समान होती है, उसी प्रकार परमात्मा राजराजेश्वर की वेदोक्त नीति अपने-अपने सृष्टि रूप सब राज्य में एक-सी है।

● (प्रश्न) जब ये जीव और प्रकृतिस्थ तत्त्व अनादि और ईश्वर के बनाये नहीं हैं तो ईश्वर का अधिकार भी इन पर न होना चाहिये, क्योंकि सब स्वतन्त्र हुए ?

(उत्तर) जैसे राजा और प्रजा समकाल में होते हैं और राजा के आधीन प्रजा होती है वैसे ही परमेश्वर के आधीन जीव और जड़ पदार्थ हैं।........जीव कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र है। वैसे ही सर्वशक्तिमान् सृष्टि, संहार और पालन सब विश्व का कर्त्ता है।

नवम समुल्लासः

(विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष)

● जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करता है।

● जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिससे तत्त्वस्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह **अविद्या** कहाती है। पवित्र कर्म, पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति और अपवित्र मिथ्याभाषणादि कर्म, पाषाणमूर्त्यादि की उपासना और मिथ्याज्ञान से बन्ध होता है।

● कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म, उपासना और ज्ञान से रहित नहीं होता। इसलिये धर्मयुक्त सत्यभाषणादि कर्म करना और मिथ्याभाषणादि अधर्म को छोड़ देना ही मुक्ति का साधन है।

(प्रश्न) मुक्ति किसको प्राप्त नहीं होती।

(उत्तर) जो बद्ध है। **(प्रश्न)** बद्ध कौन है ?

(उत्तर) जो अधर्म तथा अज्ञान में फंसा हुआ है।

● (प्रश्न) बन्ध और मोक्ष स्वभाव से होता है वा निमित्त से ?

(उत्तर) निमित्त से, क्योंकि जो स्वभाव से होता तो बन्ध और मुक्ति की निवृत्ति कभी नहीं होती।

● (प्रश्न) ये (निरोध, आवरण, जन्म, बन्ध), सब धर्म देह और अन्तःकरण के हैं, जीव के नहीं। क्योंकि जीव तो पाप-पुण्य से रहित साक्षीमात्र है। शीतोष्णादि शरीरादि के धर्म है, आत्मा निर्लेप है।

(उत्तर) देह और अन्तःकरण जड़ हैं, उनका शीतोष्ण प्राप्ति और भोग नहीं है। जैसे पत्थर को शीत और उष्ण का भान वा भोग नहीं है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणी उसका स्पर्श करता है उसी को शीत उष्ण का भान और भोग होता है। वैसे प्राण भी जड़ हैं। न उनको भूख, न पिपासा, किन्तु प्राण वाले जीव को क्षुधा तथा तृपा लगती है। वैसे ही मन भी जड़ है। न उसको हर्ष, न शोक हो सकता है किन्तु मन से हर्ष, शोक, दुःख, सुख का भोग जीव करता है।

● जैसे तलवार से मारने वाला दण्डनीय होता है, तलवार नहीं होती, वैसे ही देहेन्द्रिय अन्तःकरण और प्राणरूप साधनों से अच्छे-बुरे कर्मों का कर्त्ता जीवन सुख-दुःख का भोक्ता है। जीव कर्मों का साक्षी नहीं, किन्तु कर्त्ता तथा भोक्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है। जो कर्म करने वाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है, वह ईश्वर-साक्षी नहीं।

● (प्रश्न) जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है ! जैसे दर्पण के टूटने-फूटने से बिम्ब की कुछ हानि नहीं होती, इसी प्रकार अन्तःकरण में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव तब तक है जब तक वह अन्तःकरणोपाधि है। जब अन्तःकरण हो ाया तब जीव मुक्त है।

(उत्तर) यह बालकपन की बात है क्योंकि प्रतिबिम्ब साकार का साकार में होता—जैसे मुख और दर्पण आकार वाले हैं और पृथक् भी है। जो पृथक् न हों तो वे प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। ब्रह्म निराकार, सर्वव्यापक होने से उसका प्रतिबिम्ब ही नहीं हो सकता।

● वाह रे झूठे वेदान्तियो ! तुमने सत्यस्वरूप, सत्यकाम, सत्य संकल्प परमात्मा को मिथ्याचारी कर दिया। क्या यह तुम्हारी दुर्गति का कारण नहीं है ?..........यह तो बात उचित है कि कोतवाल चोर को दण्ड देवे परन्तु यह बात विपरीत है कि चोर कोतवाल को दण्ड देवे। वैसे ही तुम मिथ्या संकल्प और मिथ्यावादी होकर वही अपना दोष ब्रह्म में व्यर्थ लगाते हो। जो ब्रह्म मिथ्याज्ञानी, मिथ्यावादी, मिथ्याकारी होवे तो सब अनन्त ब्रह्म वैसा ही हो जाये क्योंकि वह एक रस है, सत्यस्वरूप, सत्यमानी, सत्यवादी और सत्यकारी है। ये सब दोष तुम्हारे हैं, ब्रह्म के

नहीं।

- **(प्रश्न)** मुक्ति किसको कहते हैं ?

  (उत्तर) जिसमें छूट जाना हो उसका नाम मुक्ति है।

  (प्रश्न) किससे छूट जाना ?

  (उत्तर) जिससे छूटने की इच्छा सब जीव करते हैं ?

  (प्रश्न) किससे छूटने की इच्छा करते हैं ?

  (उत्तर) जिससे छूटना चाहते हैं।

  (प्रश्न) किससे छूटना चाहते हैं ?

  (उत्तर) दुःख से।

  (प्रश्न) छूट कर किसको प्राप्त होते और कहाँ रहते हैं ?

  (उत्तर) सुख को प्राप्त होते और ब्रह्म में रहते हैं।

- **(प्रश्न)** मुक्ति और बन्ध किन-किन बातों से होता है।

(उत्तर) परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपात रहित न्याय, धर्म की बुद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने, पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सबसे उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्यायधर्मानुसार ही करे। इत्यादि साधनों से मुक्ति और इनसे विपरीत ईश्वराज्ञाभंग करने आदि काम से बन्ध होता है।

- **(प्रश्न)** मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है?

  (उत्तर) विद्यमान रहता है।

- **(प्रश्न)** कहाँ रहता है?

  (उत्तर) ब्रह्म में।

- **(प्रश्न)** ब्रह्म कहाँ है और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है?

(उत्तर) जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्त जीव अव्याहतगति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं, विज्ञान-आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरता है।

● (प्रश्न) मुक्त जीव का स्थूल शरीर होता है वा नहीं ?
(उत्तर) नहीं रहता।

● (प्रश्न) फिर वह सुख और आनन्द भोग कैसे करता है ?
(उत्तर) उसके सत्य संकल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं, भौतिकसंग नहीं रहता।

● जो मुक्ति में जीव का लय होता तो मुक्ति का सुख कौन भोगता? और जो जीव के नाश ही की मुक्ति समझते हैं वे तो महामूढ़ हैं क्योंकि मुक्ति जीव की यह है कि दुःखों से छूट कर आनन्दस्वरूप, सर्वव्यापक, अनन्त परमेश्वर में जीव का आनन्द में रहना।

● जो परमात्मा अपहतपाप्मा सर्वपाप, जरा, मृत्यु, शोक, क्षुधा, पिपासा से रहित, सत्यकाम, सत्यसंकल्प है। उसकी खोज और उसी को जानने की इच्छा करनी चाहिये।

● (प्रश्न) हम लोग किसका नाम पवित्र जानें ? कौन नाशरहित पदार्थों के मध्य में वर्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है, हमको मुक्ति का सुख भोगकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता है ?

(उत्तर) हम इस प्रकाशस्वरूप, अनादि, सदामुक्त, परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगा कर पृथिवी में पुनः माता, पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है। वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता है, सबका स्वामी है।

● (प्रश्न) जो मुक्ति से भी जीव फिर आता है तो वह कितने समय तक मुक्ति में रहता है ?

(उत्तर) वे मुक्त जीव मुक्त में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आते हैं।

● (प्रश्न) सब संसार और ग्रन्थकारों का यही मत है कि जिससे पुनः जन्म-मरण में कभी न आवें।

(उत्तर) यह बात कभी नहीं हो सकती क्योंकि प्रथम तो जीव का सामर्थ्य शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं, पुनः उसका फल

अनन्त कैसे हो सकता है ? अनन्त आनन्द को भोगने का असीम सामर्थ्य कर्म और साधन जीवों में नहीं। इसलिये अनन्त सुख नहीं भोग सकते। जिनके साधन अनित्य हैं। उनका फल नित्य कभी नहीं हो सकता।

● **(प्रश्न)** जैसे परमेश्वर नित्य मुक्त पूर्ण सुखी है वैसे ही जीव भी नित्यमुक्त और सुखी रहेगा तो कोई भी दोष न आवेगा।

(उत्तर) परमेश्वर अनन्तस्वरूप, सामर्थ्य, गुण, कर्म, स्वभाव वाला है। इसलिये वह भी अविद्या और दुःखबन्धन में नहीं गिर सकता। जीव मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण, कर्म, स्वभाव वाला रहता है, परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता।

● **(प्रश्न)** जब ऐसी तो मुक्ति भी जन्म-मरण के सदृश है इसलिये श्रम करना व्यर्थ है।

(उत्तर) मुक्ति जन्म-मरण के सदृश नहीं, क्योंकि जब तक 36000 (छत्तीस सहस्र) बार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्ति के आनन्द में रहना, दुःख का न होना, क्या छोटी बात है ? जब आज खाते-पीते हो, कल भूख लगने वाली है, पुनः इसका उपाय क्यों करते हो ?

● जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तान आदि के लिये उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति के लिये क्यों न करना? जैसे मरना अवश्य है तो भी जीवन का उपाय किया जाता है, वैसे ही मुक्ति से लौटकर जन्म में आना है, तथापि उसका उपाय करना अत्यावश्यक है ?

● **(प्रश्न)** मुक्ति के क्या-क्या साधन हैं ?

(उत्तर) जो मुक्ति चाहे वह जीवनमुक्त अर्थात् जिन मिथ्या भाषणादि पाप कर्मों का फल दुःख है, उनको छोड़ सुखरूप फल देने वाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। जो कोई दुःख ही छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहे वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे। क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है।

● सत्पुरुषों के संग से विवेक अर्थात् सत्याऽसत्य, धर्माधर्म, कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य का निश्चय अवश्य करें।

● तीन अवस्था एक जागृत दूसरी **स्वप्न** और तीसरी **सुषुप्ति** अवस्था कहाती है।

● इस इन्द्रियाँ अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कामों में लगाता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कामों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है। वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्त्तता है, वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है और जो विपरीत वर्त्तता है, वह बन्धजन्य दुःख भोगता है।

● **एक श्रवण**—जब कोई विद्वान् उपदेश करे तब शान्त, ध्यान देकर सुनना, विशेष ब्रह्मविद्या के सुनने में अत्यन्त ध्यान देना चाहिए कि यह सब विद्याओं में सूक्ष्म विद्या है।

● **दूसरा मनन**—एकान्त देश में बैठ के सुने हुए का विचार करना। जिस बात में शंका हो पुनः पूछना और सुनते समय भी वक्ता और श्रोता उचित समझें तो पूछना और समाधान करना।

● **तीसरा निदिध्यासन**—जब सुनने और मनन करने से निस्सन्देह हो जाय तब समाधिस्थ होकर उस बात को देखना तथा समझना कि वह जैसा सुना था, विचारा था वैसा ही है वा नहीं ? ध्यानयोग से देखना।

● **चौथा साक्षात्कार**—अर्थात् जैसा पदार्थ का स्वरूप, गुण और स्वभाव हो वैसा यथातथ्य जान लेना **श्रवणचतुष्टय** कहाता है।

● सदा तमोगुण अर्थात् क्रोध, मलीनता, आलस्य, प्रमाद आदि रजोगुण अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोषों से अलग होके सत्त्व अर्थात् शान्त प्रकृति, पवित्रता, विद्या, विचार आदि गुणों को धारण करे।

● (मैत्री) सुखी जनों में मित्रता (करुणा), दुःखी जनों पर दया, (मुदिता) पुण्यात्माओं से हर्षित होना, (उपेक्षा) दुष्टात्माओं में न प्रीति और न वैर करना।

● (प्रश्न) जन्म एक है वा अनेक ?

(उत्तर) अनेक।

● **(प्रश्न)** जो अनेक हों तो पूर्वजन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं ?

(उत्तर) जीव अल्पज्ञ है, त्रिकालदर्शी नहीं, इसलिये स्मरण नहीं रहता और जिस मन से ज्ञान करता है वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला, पूर्वजन्म की बात तो दूर रहने दीजिये, इसी देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना, पश्चात् जन्मा, पांचवें वर्ष से पूर्व के जो-जो बातें हुईं उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता ?

● जब इसी शरीर में ऐसा है तो पूर्वजन्म की बातों के स्मरण में शङ्का करना केवल लड़कपन की बात है और जो स्मरण नहीं होता है, इसी से जीव सुखी है। नहीं तो सब जन्मों के दुःखों को देख-देख दुःखित होकर मर जाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्म के वर्त्तमान को जानना चाहे तो भी नहीं जान सकता क्योंकि जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है। यह बात ईश्वर के जानने योग्य है, जीव के नहीं।

● तो जब तुम जन्म से लेकर समय-समय में राज, धन, बुद्धि, विद्या, दारिद्र्य, निर्बुद्धि, मूर्खता आदि सुख-दुःख संसार में देखकर पूर्वजन्म का ज्ञान क्यों नहीं करते ?

● इसलिये पूर्वजन्म के पुण्य-पाप के अनुसार वर्त्तमान जन्म और वर्तमान तथा पूर्वजन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते हैं।

● **(प्रश्न)** मनुष्य और अन्य पश्वादि के शरीर में जीव एक-सा है वा भिन्न-भिन्न जाति के ?

(उत्तर) जीव एक से हैं, परन्तु पाप-पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं।

● **(प्रश्न)** मनुष्य का जीव पश्वादि में और पश्वादि का मनुष्य के शरीर में और स्त्री का पुरुष के और पुरुष का स्त्री के शरीर में जाता-आता है वा नहीं ?

(उत्तर) हाँ ! जाता तथा आता है। क्योंकि जब पाप बढ़ जाता, पुण्य न्यून होता है तब मनुष्य का जीव पश्वादि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है तब देव अर्थात् विद्वानों का शरीर

मिलता और जब पुण्य-पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्य जन्म होता है। इसमें भी पुण्य-पाप के उत्तम, मध्यम, निष्कृट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम, मध्यम, निकृष्ट शरीरादि सामग्री वाले होते है।......जो स्त्री के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो स्त्री और पुरुष के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है।

● **(प्रश्न)** मुक्ति एक जन्म में होती है वा अनेक जन्मों में ?

(उत्तर) अनेक जन्मों में।.........जब इस जीव के हृदय की अविद्या, अज्ञानरूपी गाँठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं तभी उस परमात्मा जोकि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, उसमें निवास करता है।

● **(प्रश्न)** मुक्ति में परमेश्वर में जीव मिल जाता है वा पृथक् रहता है ?

(उत्तर) पृथक् रहता है, क्योंकि जो मिल जाये तो मुक्ति का सुख कौन भोगे और मुक्ति के जितने साधन हैं वे सब निष्फल हों जावें। वह मुक्ति तो नहीं किन्तु जीव का प्रलय जानना चाहिये। जब जीव परमेश्वर की आज्ञापालन, उत्तम कर्म, सत्संग, योगाभ्यास पूर्वोक्त सब साधन करता है, वही मुक्ति को पाता है।

● नाना प्रकार के जन्म-मरण में तब तक जीव पड़ा रहता है कि जब तक कर्मोपासना ज्ञान को करके मुक्ति को नहीं पाता। क्योंकि उत्तम कर्मादि करने से मनुष्यों में उत्तम जन्म और मुक्ति में महाकल्प पर्यन्त जन्म-मरण दुःखों से रहित होकर आनन्द में रहता है।

● सब जीव स्वभाव से सुख-प्राप्ति की इच्छा और दुःख का वियोग होना चाहते हैं परन्तु जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते तब तक उनको सुख का मिलना और दुःख का छूटना न होगा। क्योंकि जिसका कारण अर्थात् मूल होता है वह नष्ट कभी नहीं होता। जैसे—**छिन्ने मूले वृक्षो नश्यति तथा पापे क्षीणे दुःखं नश्यति।** जैसे मूल कट जाने से वृक्ष नष्ट होता है वैसे पाप को छोड़ने से दुःख नष्ट होता है।

● जो नर शरीर से चोरी, परस्त्रीगमन, श्रेष्ठों को मारने आदि दुष्ट कर्म करता है उसको वृक्षादि स्थावर का जन्म, वाणी से किये

पाप-कर्मों से पक्षी और मृगादि तथा मन से किये दुष्ट कर्मों से चाण्डाल आदि का शरीर मिलता है।

- जब आत्मा में ज्ञान हो तो तब सत्त्व, जब अज्ञान रहे तब तम और जब राग-द्वेष में आत्मा लगे तब रजोगुण जानना चाहिये।
- जो मनुष्य सात्त्विक हैं वे देव अर्थात् विद्वान्, जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य और जो तमोगुणयुक्त होते हैं वे नीच गति को प्राप्त होते हैं।
- जो आध्यात्मिक अर्थात् शरीर सम्बन्धी पीड़ा, आधिभौतिक जो दूसरे प्राणियों से दुःखित होना, आधिदैविक जो अतिवृष्टि, अतिताप, अतिशीत, मन, इन्द्रियों की चंचलता से होता है। इस त्रिविध दुःख को छुड़ाकर मुक्ति पाना अत्यन्त पुरुषार्थ है।

दशम समुल्लासः

(आचार, अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य)

● धर्मयुक्त कामों का आचरण, सुशीलता, सत्पुरुषों का संग और सद्विद्या के ग्रहण में रुचि आदि आचार इनसे विपरीत अनाचार कहाता है।

● मनुष्यों को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिसका सेवन रागद्वेषरहित विद्वान् लोग नित्य करें; जिसको हृदय अर्थात् आत्मा से सत्य कर्त्तव्य जाने वही धर्म माननीय और करणीय है।

● सम्पूर्ण वेद, मनुस्मृति तथा ऋषिप्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और जिस-जिस कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा जिसमें न हो, उन कर्मों का सेवन करना उचित है।

● जब कोई मिथ्याभाषण, चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उसके आत्मा से भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है। इसलिये वह कार्य करने योग्य नहीं है।

● क्योंकि जो मनुष्य वेदोक्त धर्म और जो वेद में अविरुद्ध स्मृत्युक्त धर्म का अनुष्ठान करता है वह इस लोक में कीर्ति और मर के सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होता है।

● श्रुति, वेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं। इनसे सब कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य का निश्चय करना चाहिये। जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्तग्रन्थों का अपमान करे उसको श्रेष्ठ लोग जातिबाह्य कर दें क्योंकि जो वेद की निन्दा करता है वही नास्तिक कहाता है।

● वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार और अपने आत्मा के ज्ञान

से अविरुद्ध प्रियाचरण ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से धर्म लक्षित होता है।

● परन्तु जो द्रव्यों के लोभ और काम अर्थात् विषय सेवा में फंसा हुआ नहीं होता उसी को धर्म का ज्ञान होता है। जो धर्म को जानने की इच्छा करें उनके लिये वेद ही परम प्रमाण है।

● यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में ईन्धन और घी डालने से बढ़ता जाता है वैसे ही कामों के उपयोग से काम कभी शान्त नहीं होता किन्तु बढ़ता ही जाता है, इसलिये मनुष्य को विषयासक्त कभी न होना चाहिये।

● इसलिये पांच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवें मन को अपने वश में करके युक्ताहार, विहार योग से शरीर की रक्षा करता हुआ सब अर्थों को सिद्ध करे।

● जितेन्द्रिय उसको कहते हैं जो स्तुति सुनके वर्ष और निन्दा सुनके शोक, अच्छा स्पर्श करके सुख और दुष्ट स्पर्श से दुःख, सुन्दर रूप देख के प्रसन्न और दुष्ट रूप देख अप्रसन्न, उत्तम भोजन करके आनन्दित और निकृष्ट भोजन करके दुःखित, सुगन्ध में रुचि और दुर्गन्ध में अरुचि नहीं करता।

● कभी बिना पूछे वा अन्याय से पूछने वाले को जो कपट से पूछता हो उसको उत्तर न देवे, उनके सामने बुद्धिमान् जड़ के समान रहे। हाँ! जो निष्कपट और जिज्ञासु हों, उनको बिना पूछे भी उपदेश करे।

● एक धन, दूसरे बन्धु-कुटुम्ब, कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पाँचवीं श्रेष्ठ विद्या, ये पाँच मान्य के स्थान हैं परन्तु धन से उत्तम बन्धु, बन्धु से अधिक अवस्था, अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म से पवित्र विद्या वाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं।

● क्योंकि चाहे सौ वर्ष का हो परन्तु जो विद्याविज्ञान रहित है वह बालक और जो विद्या विज्ञान का दाता है उस बालक को भी वृद्ध मानना चाहिये क्योंकि सब शास्त्र आप्त विद्वान्, अज्ञानी को बालक और ज्ञानी को पिता कहते हैं।

● अधिक वर्षों के बीतने से श्वेत बाल के होने, अधिक धन से और बड़े कुटुम्ब के होने से वृद्ध नहीं होता किन्तु ऋषि-महात्माओं का यही निश्चय है कि जो हमारे बीच में विद्या विज्ञान में अधिक है, वही वृद्ध पुरुष कहाता है।

● ब्राह्मण ज्ञान से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धन-धान्य से और शूद्र जन्म अर्थात् अधिक आयु से वृद्ध होता है।

● शिर के बाल श्वेत होने से बुड्ढा नहीं होता किन्तु जो युवा विद्या पढ़ा हुआ है उसी को विद्वान् लोग बड़ा जानते हैं।

● एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय **अमेरिका** कहते हैं उसमें निवास करते थे।

● ....श्री कृष्ण तथा अर्जुन पाताल (अमेरिका) में अश्वतरी अर्थात् जिसको अग्नियान नौका कहते हैं उस पर बैठ कर पाताल में जाके महाराजा युधिष्ठर के यज्ञ में उद्दालक ऋषि को ले आये थे।

● जो विद्या नहीं पढ़ा है वह जैसा काष्ठ का हाथी, चमड़े का मृग होता है वैसा अविद्वान् मनुष्य जगत् में नाममात्र मनुष्य कहाता है।

● इसलिये विद्या पढ़, विद्वान् धर्मात्मा होकर निर्वैरता से सब प्राणियों के कल्याण का उपदेश करे और उपदेश में वाणी मधुर और कोमल बोले। जो सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करते हैं वे पुरुष धन्य हैं।

● जो सत्यभाषणादि कर्मों का आचरण करना है वही वेद और स्मृति में कहा हुआ आचार है।

● माता-पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा करना देवपूजा कहाती है और जिस-जिस कर्म से जगत् का उपकार हो वह-वह कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य कर्म है।

● कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, चोर, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्यों का संङ्ग न करे। आप्त जो सत्यवादी, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय जन हैं, उनका सदा संग करने का ही नाम श्रेष्ठाचार है।

● (प्रश्न) आर्य्यावर्त्त देशवासियों का आर्यवर्त्त देश से भिन्न-भिन्न

देशों में जाने से आचार नष्ट होता है वा नहीं ?

● (उत्तर) यह बात मिथ्या है क्योंकि बाहर भीतर की पवित्रता करनी, सत्य-भाषणादि आचरण करना है वह जहाँ कहीं करेगा आचार और धर्म-भ्रष्ट कभी न होगा और आर्यवर्त्त में रहकर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचारभ्रष्ट कहावेगा।

● जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था उसमें सब भूगोल के राजाओं को बुलाने को निमन्त्रण देने के लिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गये थे, जो दोष मानते होते तो कभी न जाते।

● सज्जन लोगों को राग, द्वेष, अन्याय, मिथ्याभाषणादि दोषों को छोड़ निर्वैर, प्रीति, परोपकार, सज्जनतादि का धारण करना उत्तम आचार है।

● यह भी समझ लें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्त्तव्य के साथ है। जब हम अच्छे काम करते हैं तो हमको देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं लग सकता, दोष तो पाप के काम करने में लगते हैं।

● हाँ, इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त धर्म का निश्चय और पाखण्डमत का खण्डन करना अवश्य सीख लें जिससे कोई हमको झूठा निश्चय न करा सके।

● क्या बिना देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में राज्य या व्यापार किये स्वदेश की उन्नति तभी हो सकती है? जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेसी, स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो विना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।

● हाँ, इतना अवश्य चाहिये कि मद्यमांस का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करें।

● क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते, जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को घोड़े, हाथी, रथ पर चढ़ या पैदल होके मारता जाना, अपना विजय करना ही **आचार** और पराजित होना **अनाचार** है।

● इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते-लगाते विरोध करते-कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुपार्थ पर चौका लगाकर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पकाकर खावें।

● हाँ! जहाँ भोजन करें उस स्थान को धोने, लेपन करने, झाडू लगाने, कूड़ा-कर्कट दूर करने में प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

● (प्रश्न) द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावें वा शूद्र के हाथ की बनाई खावें ?

● (उत्तर) शूद्र के हाथ की बनाई खावें क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यवर्णस्थ स्त्री-पुरुप विद्या पढ़ाने, राज्यपालन और पशुपालन, खेती व्यापार के काम में तत्पर रहें।

● आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री, पुरुप पाकादि सेवा करें परन्तु वे शरीर, वस्त्र आदि से पवित्र रहें। आर्यों के घर में जब रसोई बनावें तब मुख बांध के बनावें क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला श्वास भी अन्न में न पड़े।

● (प्रश्न) शूद्र के छुए हुए पके अन्न के खाने में जब दोष लगाते हैं तो उसके हाथ का बनाया कैसे खा सकते हैं ?

(उत्तर) यह बात कपोलकल्पित झूठी है क्योंकि जिन्होंने गुड़, चीनी, घृत, दूध, पिसान, शाक, फल, मूल खाया उन्होंने जानो सब जगत् भर के हाथ का बनाया और उच्छिष्ट खा लिया।

● हाँ, मुसलमान, ईसाई आदि मद्य-मांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को भी मद्य-मांसादि खाना-पीना अपराध पीछे लग पड़ता है परन्तु आपस में आर्यों का एक भोजन होने में कोई भी दोष नहीं दीखता।

● जब तक एक मत, एक हानि-लाभ, एक सुख-दुःख परस्पर न मानें तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है। परन्तु केवल खाना-पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें ग्रहण नहीं करते तब तक बढ़ती के बदले हानि होती है।

● जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर

पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पाँच सहस्र वर्ष के पहले हुई थीं, उनको भी भूल गये ?

● आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया, सो तो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःख-सागर में डुबा मारेगा।

● उसी दुष्ट दुर्योधन गौत्रहत्यारे, स्वदेशविनाशक नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजयोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाये।

● द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को मलीन, विष्ठा, मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक, फल, मूलादि न खाना (चाहिये)।

● अनेक प्रकार के मद्य, गांजा, अफीम आदि जो-जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं, उनका सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े-बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्य-मांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य-मांस के परमाणुओं से ही पूरित हैं, उनके हाथ का न खावें।

● एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में 475600 (चार लाख, पचहत्तर सहस्र, छः सौ)। मनुष्यों को सुख पहुँचता है वैसे पशुओं को नकारें, न मारने दें। गाय का पीढ़ी पर पीढ़ी बढ़ाकर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्यों का पालन होता है। इससे भिन्न (बैल) गाड़ी, सवारी, भार उठाने आदि कर्मों से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं तथा गाय दूध में अधिक उपकारक होती है। परन्तु जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंस भी होते हैं परन्तु गाय के दूध-घी से जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं, इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है और कोई अन्य विद्वान् होगा, वह भी इसी प्रकार समझेगा।

● बकरी के दूध से 25920 (पच्चीस सहस्र, नौ सौ बीस) आदमियों का पालन होता है वैसे हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं।

● इन पशुओं (गाय इत्यादि) के मारने वालों को मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा। देखो ! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे तभी आर्यावर्त्त वा भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी वर्त्तते थे क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की वहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे।

● जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गो आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपायी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है।

● (प्रश्न) जो सभी अहिंसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायें कि सव गाय आदि पशुओं को मार खायें, तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाये ?

(उत्तर) यह राजपुरुषों का काम है कि हानिकारक पशु वा मनुष्य हों, उनको दण्ड देवें और प्राण भी वियुक्त कर दें।

● (प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंक दें ?

(उत्तर) चाहे फेंक दें, चाहे कुत्ते और मांसाहारियों को खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती, किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है।

● जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल-कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है, वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है।

● जिन पदार्थों से स्वास्थ्य रोगनाश, बुद्धि-बल-पराक्रम-वृद्धि और आयुवृद्धि होवे, उन तण्डुलादि, गोधूम, फल, मूल, कन्द, दूध, घी, मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है।

● जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने लगते हैं। जिस-जिस के लिये जो-जो पदार्थ वैद्यकशास्त्र में वर्जित किये हैं, उन-उन का सर्वथा त्याग करना और जो-जो जिसके लिये विहित हैं उन-उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।

● **(प्रश्न)** एक साथ खाना खाने में दोष है वा नहीं ?

(उत्तर) दोष है, क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती। जैसे—कुष्ठी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है, सुधार नहीं।

● न किसी को अपना झूठा पदार्थ दें और न किसी के भोजन के बीच आप खावें। न अधिक भोजन करें और न भोजन किए पश्चात् हाथ-मुख धोये बिना कहीं इधर-उधर न जायें।

● **(प्रश्न)** भला स्त्री-पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खावें ?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि उनके भी शरीरों का स्वभाव भिन्न-भिन्न है।

● **(प्रश्न)** चौके में बैठकर भोजन करना अच्छा वा बाहर बैठ के?

(उत्तर) जहाँ पर अच्छा, रमणीक, सुन्दर स्थान दीखे वहाँ भोजन करना चाहिये परन्तु आवश्यक युद्धादिकों में तो घोड़े आदि यानों पर बैठ के वा खड़े-खड़े भी खाना-पीना अत्यन्त उचित है।

● **(प्रश्न)** क्या अपने ही हाथ का खाना और दूसरे का हाथ का नहीं ?

(उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनाये तो बराबर सब आर्यों के खाने में कुछ भी हानि नहीं। क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री-पुरुष रसोई बनाने, चौका देने, बर्तन-भांडे मांजने आदि बखेड़े में पड़े रहें तो विद्यादि शुभ गुणों की वृद्धि कभी नहीं हो सके।

● देखो! महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा ऋषि, महर्षि आये थे। एक ही पाठशाला से भोजन किया करते थे, जब से ईसाई, मुसलमान आदि मत-मतान्तर चले, आपस में वैर-विरोध हुआ, उन्हीं ने मद्यपान, गोमांसादि का खाना-पीना स्वीकार किया, उसी समय से भोजनादि में बखेड़ा हो गया।

● देखो ! काबुल, कंधार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि देशों के राजाओं की कन्या, गान्धारी, माद्री, उलोपी आदि के साथ आर्य्यावर्त्त देशीय राजा लोग विवाह आदि व्यवहार करते थे। शकुनि आदि, कौरव,

पाण्डवों के साथ खाते-पीते थे, कुछ विरोध नहीं करते थे। क्योंकि उस समय सर्व भूगोल में वेदोक्त एकमत था, उसी में सब की निष्ठा थी।

● परमात्मा सबके मन में सत्य मत का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हों। इसमें सब विद्वान् लोग विचार कर विरोधभाव छोड़ के अविरुद्धमत के स्वीकार से सब जने मिलकर सबके आनन्द को बढ़ावें।

● इन चौदह समुल्लासों (पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध) को पक्षपात् को छोड़ न्याय दृष्टि से जो देखेगा उसके आत्मा में सत्य अर्थ का प्रकाश होकर आनन्द होगा और जो हठ, दुराग्रह और ईर्ष्या से देखे, सुनेगा, उसको इस ग्रन्थ का अभिप्राय यथार्थ विदित होना कठिन है। इसलिये जो कोई इसको यथावत् न विचारेगा, वह इसका अभिप्राय न पाकर गोता खाया करेगा।

● विद्वानों का यही काम है कि सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग करके परम आनन्दित होते हैं। वे ही गुण ग्राहक पुरुष विद्वान् होकर, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फलों को प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं।

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाशः

◆ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म, जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी, इसलिये उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके।

◆ यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन, जिसको अन्यथा जानें वा मानें उसको स्वीकार कोई भी बुद्धिमान नहीं करते, किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक, पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं, वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता।

◆ अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनिमुनि पर्य्यन्तों के माने हुये ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हूँ, सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ।

◆ मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है, उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है, उसको छोड़ना और छुड़वाना, मुझको अभीष्ट है।

◆ यदि मैं पक्षपात करता तो आर्य्यावर्त्त में प्रचारित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता। किन्तु जो-जो आर्य्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल-चलन है, उसका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं, उनका त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूँ। क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहिः है।

◆ मनुष्य उसी को कहना और मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे।

♦ इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं कि चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान और गुणवान् भी हो, तथापि उसका नाश अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति, सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।

♦ ये संक्षेप में स्वसिद्धान्त (ईश्वर वेदादि) दिखला दिये हैं। इनकी विशेष व्याख्या इसी **सत्यार्थप्रकाश** के प्रकरण-प्रकरण में है तथा ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है अर्थात् जो-जो बात सबके सामने माननीय है उसको मानना अर्थात् जैसे सत्य बोलना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है, ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूँ और जो मत-मतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं, उनका मैं पसन्द नहीं करता क्योंकि इन्हीं मतवालों ने अपने मतों का प्रचार कर, मनुष्यों को फँसा के, परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट, सर्व सत्य का प्रचार कर, सबको ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा सके। सब से सबका सुख लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे जिससे सब लोग सहज से धर्मार्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः। शन्नो भवत्वर्य्यमा।। शन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिः। शन्नो विष्णुरुरुक्रमः।। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि। ऋतंवदिष्यामि। सत्यंवमि दिष्यामि। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम। अवतुक्तारम्। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

कार्य एवं प्रेरणा

(तृतीय भाग)

महर्षि दयानन्द जी का आधुनिक भारत के निर्माताओं में प्रमुख स्थान है। ऐसे समय जबकि आध्यात्मिक अव्यवस्था, सामाजिक कुरीतियाँ तथा राजनीतिक दासता देश को जकड़े हुए थी महर्षि दयानन्द ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक उद्धार का बीड़ा उठाया। सत्य, सामाजिक समानता और एक ईश्वर की आराधना का सन्देश उन्होंने दिया। भारत के संविधान में सामाजिक क्षेत्र के लिए अनेक व्यवस्थाएँ महर्षि दयानन्द के उपदेशों से प्रेरणा लेकर ही की गई हैं।.........आज जबकि देश पर संकट के बादल छाये हुए हैं। हमें महर्षि दयानन्द के उपदेशों को याद करना चाहिये और अतीत से शिक्षा लेकर, आपसी भेदभाव को दूर कर और उनके उपदेशों पर चलकर देश को सबल बनाना चाहिये। .... महर्षि दयानन्द जी ने स्वराज्य का जो सबसे पहले सन्देश हमें दिया था उसकी आज हमें रक्षा करनी है। आज की स्थिति में भी महर्षि के उपदेश अति मूल्यवान् एवं सूर्य के समान प्रभावकारी हैं।

भारत रत्न महामहिम डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, राष्ट्रपति–

रविवार 24 फरवरी 1963 ई.

आदर्श गुरु (स्वामी विरजानन्द जी) ने गुरु दक्षिणा के रूप में देश में फैले घोर अज्ञान को दूर करने की **प्रतिज्ञा चाही** । आदर्श शिष्य (स्वामी दयानन्द जी) ने सहर्ष उस आदेश को **शिरोधार्य किया** और उनका शुभाशीर्वाद लेकर वे कार्य क्षेत्र में उतरे।

100 वर्ष बाद दयानन्द दीक्षा शताब्दि समारोह के पुण्यावसर पर मथुरा नगरी में उसी स्थान पर विरजानन्द वैदिक अनुसन्धान भवन का

शिलान्यास करते हुए स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति भारत रत्न डा. राजेन्द्र प्रसाद जी ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा—स्वामी दयानन्द राष्ट्रवादी और स्वराज्य के पथ-प्रदर्शक थे। वे प्रकाण्ड पण्डित, यशस्वी नेता और निर्भीक सुधारक थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता दूरदर्शिता थी। यह देखकर आश्चर्य होता है कि विदेशी शासन के विरोध में सक्रिय संघर्ष के समय म. गाँधी ने जिन बातों पर अधिक बल दिया और उन्हें रचनात्मक कार्य की संज्ञा दी, प्रायः वे सभी काम 50 वर्ष पूर्व स्वामी दयानन्द के कार्यक्रम में सम्मिलित थे।

दयानन्द जी घर से अमृत की खोज में निकले थे। सत्य और अमृत के अभिलाषी ने देखा—आज समूचा विशेषकर सत्य ज्ञान वेद की अनुयायिनी आर्यजाति, पथ-भ्रष्ट होकर मृत्यु के मुख में चली जा रही है। उन्होंने अपनी मुक्ति और ब्रह्मानन्द को छोड़कर इस जाति की डूबती नैया की पतवार सम्भाली। अब आत्मचिन्तन गौण ओर राष्ट्र सेवा प्रधान लक्ष्य बन गया। महर्षि जी स्वराज्य के मन्त्रदाता थे। वे राजा-महाराजाओं को सुधार कर उनको संगठित करने के लिये प्रयत्नशील थे। उन्होंने राजा और प्रजा दोनों को सुधार कर देश स्वातन्त्र्य के लिये सतत् प्रयत्न किये। अखिल भारतीय कांग्रेस के भूतपूर्व प्रधान डा. पट्टाभि सीतारमैया ने कांग्रेस के इतिहास में स्पष्ट शब्दों में लिखा है —

महर्षि दयानन्द न ही सबसे पहले सन् 1875 में स्वराज्य की रूपरेखा प्रस्तुत की थी जबकि कांग्रेस ने सन् 1906 में स्वराज्य की बात कही।

महर्षि जी ने सत्यार्थप्रकाश, आर्याभिविनय, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, यजुर्वेद, ऋग्वेदभाष्य इत्यादि अपने अमर ग्रन्थों, पूना व्याख्यानों (उपदेश, मंजरी शीर्षक से प्रकाशित पुस्तक रूप में) द्वारा तथा स्थान-स्थान पर सामूहिक एवं व्यक्तिगत रूप में भारतीयों को स्वतन्त्र, अखण्ड, निर्भय-स्वराज्य प्राप्ति की प्रबल प्रेरणा देते रहे।

कुछ उद्धरण इस प्रकार से हैं —

◆ अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्यवर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े से राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित, अपने-पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।

(सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास)

◆ जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्यों तुम लोग महाभारत की बातें जो पाँच सहस्र वर्ष पहले हुई थी। उनको भी भूल गये ? देखो ! आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया ! सो तो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःख-सागर में डुबा मारेगा, उसी दुष्ट दुर्योधन, गोत्रहत्यारे, स्वदेशविनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। **परमेश्वर कृपा करे यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाये।**

(सत्यार्थप्रकाश, दशम समुल्लास)

◆ जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेसी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो बिना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। (सत्यार्थप्रकाश, दशम समुल्लास)

◆ सृष्टि से ले पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देश में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे क्योंकि कौरव-पाण्डव

पर्यन्त यहाँ के राज्य और राजशासन में सब भूगोल के सब राजा और प्रजा वाले थे। **(सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास)**

♦ स्वयंभव राजा से लेकर पाण्डवपर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् परस्पर के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत-सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थरहितता, ईर्ष्या-द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इससे देश में विद्या-सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुर्व्यसन बढ़ जाते हैं। जैसा कि मद्य-मांस सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं। **(सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास)**

♦ इन लोगों (ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाज) में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है। ईसाईयों के आचरण बहुत से लिये हैं। खान-पान, विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं। अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही उसके बदले पेटभर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं। ब्रह्मादि-महर्षियों का नाम भी नहीं लेते प्रत्युत् ऐसे कहते हैं कि बिना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्यवर्त्ती लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं, इनकी उन्नति कभी नहीं हुई। वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही परन्तु निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते।.......... भला जब आर्यवर्त्त में उत्पन्न हुये हैं और इसी देश का अन्न-जल, खाया-पीया है, अब भी खाते-पीते हैं, अपने माता-पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़कर दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्रह्मसमाजी और प्रार्थना समाजी एतद्देशस्थ संस्कृतविद्या से रहित, अपने को विद्वान् प्रकाशित करते हैं। इंग्लिश भाषा पढ़कर पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का स्थिर और वर्धित बुद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है? .... वे (अंग्रेज) विद्वान् होकर भी किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते, जो कुछ करते हैं, अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन, मन, धन व्यय करते हैं आलस्य को छोड़कर उद्योग किया करते

हैं। देखो ! अपने देश के बने हुए जूते को आफिस (कार्यालय) और कचहरी में जाने देते हैं इस देशी जूते को नहीं। इतने में ही समझ ले ओ कि अपने देश के बने हुए जूतों का भी कितना मान-प्रतिष्ठा करते हैं। इतना अन्य देशस्थ मनुष्य का नहीं करते। देखो! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों को हुये और आज तक ये लोग मोटे कपड़े आदि पहनते हैं जैसा कि स्वदेश में पहनते थे परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल-चलन नहीं छोड़ा और तुम में से बहुत लोगों ने उनका अनुकरण कर लिया, इसी से तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं, अनुकरण करना किसी बुद्धिमान का काम नहीं।—इसलिए जो उन्नति करना चाहो तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उनके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें।

(सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास)

♦ हे ईश्वर ! स्वदेशस्थ आदि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर प्रीतिमान्, पाखण्ड रहित करें। अन्योन्य प्रीति से परम वीर्य, पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें। हम में सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों।

(आर्याभिविनय)

♦ **अन्य देशवासी राजा देश में कभी न हो तथा हम लोग पराधीन कभी न हो।—हे कृपा सिन्धु भगवन्! हम पर सहायता करो जिससे सुनीतियुक्त होकर हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े।**

(आर्याभिविनय)

♦ हे **सभापते ! विद्या-मय ! न्यायकारिन्! सभासद् सभाप्रिय सभा हो। हमारा राजा न्यायकारी हो।** ऐसी इच्छा वाले आप हमको कीजिये। किसी एक मनुष्य को हम लोग राजा कभी न मानें।

(आर्याभिविनय)

♦ हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर ! आपकी कृपा, रक्षा और सहाय से हम लोग परस्पर एक-दूसरे की रक्षा करें और हम सब लोग परम प्रीति

से मिलके सबसे उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्त्ती राज्य आदि सामग्री से आनन्द को आपके अनुग्रह से सदा भोगें। हे प्रीति के उत्पादक! आप ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें किन्तु एक-दूसरे के मित्र हो के सदा वर्त्तें।

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-ईश्वर प्रार्थना विषय)

♦ अत्यन्त पुरुपार्थ और शरीर की आरोग्यता से चक्रवर्ती राज्य लक्ष्मी की प्राप्ति करना चाहिये–जब तक मनुष्य बल और क्रियाओं से युक्त होकर शत्रुओं को नहीं जीतते तब तक राज्य सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।–जो लोग................अच्छी शिक्षा देकर शूरवीर पुरुपों का सत्कार करके सेना नहीं रखते हैं, उनका सब जगह सहज में पराजय हो जाता है। (यजुर्वेद 1-6–1-28-5-37)

♦ जिस राजा के वश में भूमि, जल, अग्नि और पवन हैं, उस राजा को किसी शत्रु आदि से भय नहीं होता और वह राजा यशस्वी और प्रसिद्ध इस जगत् में होता है। (ऋग्वेद 5-37-5)

♦ मैं जैसा सत्यधर्म की उन्नति और स्वदेश उपकार में प्रसन्न होता हूँ, वैसा किसी अन्य बात पर नहीं। क्योंकि यही मनुष्य-जन्म, विद्वान् राजा वा धनाढ्य पुरुप होने का मुख्य फल है, जिसको कि आप लोग तन, मन, धन और पुरुपार्थ से करना चाहते हैं, और यह आप लोगों ही का कर्त्तव्य कर्म है। (1 मई सन् 1883 को श्रीयुत रावराजा श्री तेजसिंह को लिखे पत्र से)

♦ अत्यन्त आनन्द की बात है कि आप लोगों में स्वदेश हित की बात निश्चित हुई है, परन्तु स्वदेश आदि सब मनुष्यों का निर्विघ्न हित आर्य समाज से यथार्थ होगा। (चैत्र शुक्ला 6 सम्वत् 1931 को श्रीयुत गोपाल राव हरिदेशमुख को बम्बई से लिखे पत्र से)

♦ राजाओं की सेना और सभा में जो पुरुप हों वे सब दुप्टों पर तेजधारी, श्रेप्ठों पर शान्तरूप, सुख, दुःख के सहने वाले और धन के लिये अत्यन्त पुरुपार्थी हों, क्योंकि दुप्टों पर क्रुद्ध स्वभाव और श्रेप्ठों पर सहनशील होना यह राज्य का स्वरूप है।

(पूना व्याख्यान संख्या 9–उपदेश मंजरी से)

♦ स्वदेशी प्रयोग के महर्षि जी कितने प्रबल समर्थक थे। स्वयं स्वदेशी पहनते थे एवं अन्यों को प्रेरणा देते थे। स्वदेशी के प्रथम आन्दोलनकर्त्ता के रूप में उन्होंने महान् कार्य किये। दो अन्य उदाहरण–ऊधव! देखो तुम्हारे पिता कैसे मोटे, सादे और अपने देश के बने कपड़े के वस्त्र पहनते हैं। उनका जाति बिरादरी में कितना मान है। क्या तुम इस विदेशी कपड़े से बने नये वेश से विभूषित होकर अपने पिता से अधिक आदर के पात्र हो गये हो ?–**जब अपने देश की वस्तुओं को अपनाने में शोभा है।–जब अपने देश का बना छः पैसे का चाकू यही काम कर सकता है तो तुमने सवा रुपये का विदेशी चाकू मोल लेकर क्यों अपने देश का धन नष्ट किया ?**

♦ यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा देश नहीं है। इसीलिये इस भूमि का नाम **सुवर्ण भूमि** है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं कि जो पारसमणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त्त देश, ही सच्चा पारसमणि है जिसको लौह रूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।–**जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्यावर्त्त देश से मिश्र वालों, उनसे यूनानी, उनसे रूस और उनसे यूरोप देश में उनसे, अमेरिका आदि देशों में फैली है।–(सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास)** महर्षि जी के देश प्रेम और देश प्रशंसा का कितना स्पष्ट वर्णन है। भारत के इस गौरव को तो आज विदेशी विद्वान् भी हृदय से स्वीकार करते हैं।

महर्षि दयानन्द जी की स्वदेश भक्ति और उनके द्वारा किये गये महान् कार्यों के प्रति श्रद्धाञ्जली अर्पित करते हुये मुसलमान विदुषी श्रीमती खदीजा बेगम एम.ए. ने कहा–**सोते, जागते, चलते-फिरते वे हर समय और हर प्रकार भारतमाता की सेवा में लगे रहे और अन्ततोगत्वा उन्होंने अपना प्यारा जीवन अपने देश के लिये बलिदान कर दिया। यदि स्वामी दयानन्द जी जैसे महर्षि भारतवर्ष में पैदा न होते जो आज हमको महात्मा गाँधी जी, महात्मा तिलक जी**

और लाला लाजपतराय जी जैसे कार्यकर्त्ता और भक्तों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता।—महर्षि दयानन्द भारत माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओं में से थे, जिनका नाम संसार के इतिहास में सदा चमकते हुए सितारों की तरह प्रकाशित रहेगा। वह भारत माता के उन सपूतों में थे, जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी अभिमान किया जाय थोड़ा है। नैपोलियन ओर सिकन्दर जैसे अनेक सम्राट् एवं विजेता तो संसार में बहुत से उत्पन्न हुये हैं परन्तु स्वामी दयानन्द जी महाराज इन सब से बढ़कर शक्तिशाली और विजेता हुए हैं।

महर्षि जी के रग-रग, रोम-रोम, खून के बिन्दु-बिन्दु स्वदेश प्रेम कूट-कूटकर भरा था। उनके हृदय में दासता के प्रति घृणा थी और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये बड़ी प्रबल ज्वाला धधकती थी। इस प्रसंग में जनवरी सन् 1873 में कलकत्ता में तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर जनरल व वायसराय लार्ड नाथब्रुक से लार्ड बिशप पादरी के द्वारा हुई भेंट स्वामी जी की स्वदेश भक्ति तथा निर्भीकता का साक्षात् एवं स्वर्णिम प्रमाण है। इस भेंट का विवरण इण्डिया हाउस लन्दन में से गर्वनर जनरल की गुप्त डायरी में से उपलब्ध हुआ है।

वायसराय से भेंट

लार्ड नार्थब्रुक गवर्नर जनरल व वायसराय से सन् 1873 ईस्वी में महर्षि दयानन्द की निम्न प्रामाणिक व रेकार्ड की हुई भेंट सम्पन्न हुई, जिसमें स्वामी जी की असाधारण दूरदर्शिता तथा देशभक्ति का अद्वितीय परिचय मिलता है। यह भेंट इंग्लैण्ड के लार्ड विशप द्वारा आयोजित की गई थी। यह ईसाई, पादरी, कुछ बार स्वामी जी की भाषण सभाओं की अध्यक्षता कर चुके थे और उनकी अद्वितीय विद्वता के भारी समर्थक थे। वे महर्षि दयानन्द जी के इस्लाम और ईसाइयत के सम्बन्ध में अगाध ज्ञान को देखकर विस्मित हो जाते थे। उन्हें इस बात पर आश्चर्य होता था कि अरबी और अंग्रेजी न जानते हुए भी उन धर्मों की स्वामी जी को कितनी जानकारी है। इस भेंट से स्वराज्य के प्रथम आन्दोलन कर्त्ता महर्षि दयानन्द जी के हृदय में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये विद्यमान दृढ़तम

भावना का प्रमाण मिलता है। यह भेंट दुभाषिये के द्वारा हुई थी।

साधारण शिष्टाचार के पश्चात् इस प्रकार बातचीत आरम्भ हुई–

वायसराय–पण्डित दयानन्द ! मुझे सूचना मिली है कि आप अन्य मत-मतान्तरों व धर्मों की जो बड़ी आलोचना करते हैं इससे उनके हृदय में क्षोभ उत्पन्न होता है और आपके विरुद्ध भयानक विचार पैदा होते हैं विशेषकर मुस्लिम और ईसाई श्रोताओं में। क्या आप अपने शत्रुओं से किसी प्रकार का खतरा अनुभव करते हैं ? विशेष रूप से मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आपको हमारी सरकार की ओर से किसी प्रकार के संरक्षण की आवश्यकता है ?

महर्षि दयानन्द–मुझे इस राज्य में अपने विश्वास के अनुसार प्रचार करने की पूरी स्वतन्त्रता है। मुझे व्यक्तिगतरूप में किसी प्रकार का खतरा नहीं है।

वायसराय–यदि ऐसी बात है तो क्या आप अपने देश में ब्रिटिश शासन द्वारा उपलब्ध उपकारों के सम्बन्ध में प्रशंसा के कुछ उद्‌गार प्रकट करेंगे और अपने व्याख्यानों के आरम्भ में जो ईश्वर-प्रार्थना आप किया करते हैं, उसमें भारत देश पर अखण्ड अंग्रेजी शासन के लिये भी प्रार्थना किया करेंगे ?

महर्षि दयानन्द–मैं किसी भी स्थिति में इस प्रकार के प्रस्ताव को नहीं मान सकता, क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियों को अबोध राजनीतिक उन्नति और संसार के राष्ट्रों में सम्मानपूर्वक स्थान प्राप्त करने के लिये भारत को शीघ्र ही पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये।

श्रीमान जी ! मैं प्रतिदिन प्रातः-सायं ईश्वर से प्रार्थना करते हुये याचना करता हूँ कि वह दयालु भगवान अपनी असीम कृपा से मेरे देश को विदेशी शासन से शीघ्र ही मुक्त करें।

वायसराय ने इस प्रकार की स्पष्ट और निर्भीक उत्तर की लेशमात्र भी कल्पना नहीं की थी। वे घबरा उठे और तुरन्त ही महर्षि जी से बातचीत बन्द कर दी। इस वार्त्तालाप ने वायसराय के हृदय में महर्षि दयानन्द के उद्देश्यों तथा महान् कार्यों के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न कर दिया।

वायसराय ने इस बातचीत का विवरण अपनी एक साप्ताहिक डायरी के द्वारा इण्डिया आफिस लंदन को भेजा और महारानी विक्टोरिया की सरकार के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को लिखा कि उन्होंने इस बागी फकीर पर सर्त्तकता पूर्ण दृष्टि रखने के लिये विशेष गुप्तचर नियुक्त करने के आदेश दे दिये हैं।

स्वामी जी के द्वारा बजाये गये क्रान्ति के बिगुल ने और स्वतन्त्रता प्राप्ति की ज्वाला ने अपने पीछे असंख्य नेताओं को प्रेरित किया जिन्होंने हंसते-हंसते स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर प्राण न्यौछावर कर दिये। देश ने नया मोड़ लिया जब लाला लाजपतराय, श्री हरदयाल, श्री स. अजीत सिंह, श्री भाई परमानन्द, श्री स्वामी श्रद्धानन्द आदि-आदि स्वामी जी के असंख्य अनुयाइयों ने देश की स्वतन्त्रता के लिये अपना सर्वस्व स्वाहाः कर दिया। यह सत्य है कि महर्षि जी से प्रेरणा पाकर सर्व श्री दादाभाई नौराजी, गोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, भगतसिंह, आजाद, बिस्मिल, पं. मदनमोहन मालवीय, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस, महात्मा गाँधी, सरदार पटेल आदि महान् नेताओं ने ऋषि के मिशन को आगे बढ़ाया पर यह अकाट्य सत्य है कि जहाँ स्वामी जी के जीवन में अंग्रेजी सरकार और तत्कालीन राजा-महाराजों ने उनके पीछे कई गुप्तचर लगा रखे थे और इसी बागी फकीर से भयभीत रहते थे वहाँ उनके बाद अंग्रेज सरकार आर्यों को राजद्रोह के अभियोग में चुन-चुनकर पकड़ा करती थी और उन्हें सबसे अधिक क्रान्तिकारी समझती थी। आर्यों के महान् बलिदानों ने स्वतन्त्रता के इतिहास को ही अमर कर दिया।

महर्षि दयानन्द से पूर्व भी अनेक सुधारक हुए किन्तु उनकी देशभक्ति और राष्ट्रीयता विलक्षण, अद्भुत और निराली थी। जहाँ उन्होंने स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न किये, राष्ट्र में नवजीवन संचार किया वहाँ राष्ट्र की एकता, आपसी प्रेम और संगठन के लिये हिन्दी का, खाद्य पदार्थों में आत्मनिर्भरता एवं राष्ट्रीय आर्थिक विकास के लिये गोवंश के सुधार एवं संरक्षण के लिये प्रयत्नशील रहे। देश की स्वतन्त्रता और इसकी चहुंमुखी उन्नति के लिये महर्षि ने जो महान् क्रान्तिकारी प्रयत्न किये उनका उदाहरण भारत में ही नहीं वरन् संसार के इतिहास में भी नहीं मिलता।

लौह **पुरुष सरदार पटेल के शब्दों में**—महर्षि दयानन्द की सबसे बड़ी देन यही है कि उन्होंने राष्ट्र भाषा को असमर्थता की दीन दशा से उठाकर उन्नति की ओर अग्रसर कर दिया। उन्होंने ही वास्तव में **स्वतन्त्रता की आधार शिला** स्थापित की थी। अस्पृश्यता के विरुद्ध आन्दोलन का सूत्रपात उनके द्वारा ही हुआ, इसी प्रकार जिन लोगों को बलात् विधर्मी बनाया गया, उनको पुनः शुद्ध करने का आन्दोलन उन्होंने चलाया। महर्षि के कार्यों का ही आज यह परिणाम है कि हमारे विधान में अस्पृश्यता को समूल हटा दिया गया और आर्य भाषा हिन्दी का स्वीकार कर लिया गया। वस्तुतः महर्षि दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कि **हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का सर्वप्रथम आन्दोलन किया था।**

स्वामी दयानन्द जी त्रिकालदर्शी थे। वे गुजरात में उत्पन्न हुए, उनकी मातृभाषा गुजराती थी और वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। महर्षि ने भारत माता की जो महान् सेवा की एवं आर्य जाति पर जो उपकार किये उनको देखते हुए एक मत होकर कहा जा सकता है कि यदि वे **सत्यार्थप्रकाश** जैसी अमर कृतियाँ अपनी मातृभाषा गुजराती अथवा शिक्षित भाषा संस्कृत में लिखते तो जनता बड़े प्रेम से इन भाषाओं को सीखती और श्रद्धा से स्वाध्याय करती परन्तु दूरदर्शी महर्षि ने लगभग 90 वर्ष पूर्व ही राष्ट्र को एकसूत्र में बाँधने के लिये आर्यभाषा (हिन्दी) को राष्ट्रभाषा के पद पर गौरवान्वित किया।

महर्षि दयानन्द जी ने जहाँ स्वयं आर्य भाषा हिन्दी को पढ़ना, लिखना जारी रखा वहाँ अपने द्वारा संस्थापित आर्यसमाज के सदस्यों के लिये आर्य भाषा का पढ़ना और इसका ज्ञान आवश्यक ठहराया। इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ साक्षी हैं कि आर्यसमाज और इसकी संस्थाओं ने प्रान्तीयता, संकीर्णता, ऊँच-नीच के भेदभाव आदि से ऊपर उठकर निस्वार्थ भाव से हिन्दी का प्रचार किया। स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा संस्थापित गुरुकुल कांगड़ी आदि संस्थाएँ तो अपने जन्म काल से ही केवल हिन्दी माध्यम से स्नातक परीक्षा तक शिक्षा देती आई हैं। जहाँ स्वामी जी को खड़ी बोली के गद्य साहित्य का सूत्रधार कहा जाता है वहाँ उनके

आर्यसमाज के अनेक विद्वानों का हिन्दी साहित्य के निर्माण में प्रमुख हाथ है। आर्य समाज ने महान् कवि, लेखक, पत्रकार, ग्रन्थकार, कहानीकार, नाटककार, उपन्यासकार आदि देश को दिये जिनके अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप हिन्दी का क्रान्तिकारी प्रचार एवं प्रसार हुआ। मंगलाप्रसाद तथा अन्य प्रकार के पारितोषक प्राप्त करने का श्रेय अधिकांश आर्यसमाजी विद्वानों को ही है।

भारतीय लोक सभा के प्रथम अध्यक्ष तथा माननीय श्री अनन्त शयनम अय्यंगार ने कितने स्पष्ट शब्दों में कहा था—**यदि महात्मा गाँधी राष्ट्रपिता थे तो स्वामी दयानन्द राष्ट्रपितामह थे। स्वामी दयानन्द ने ही सर्वप्रथम स्वराज्य प्राप्ति और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का आन्दोलन आरम्भ किया था। राष्ट्रीय एकता, जिसका कि आजकल हम बहुत शोर मचा रहे हैं, स्वामी जी की ही विचारधारा का परिणाम है।**

भाई मेरी आँखें तो उस दिन को देखने के लिये तरस रही हैं जब कश्मीर से कन्या कुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को समझने और बोलने लग जायेंगे। जिन्हें सचमुच मेरे भावों को जानने की इच्छा होगी वे इस आर्य भाषा (हिन्दी) का सीखना अपना कर्त्तव्य समझेंगे। अनुवाद तो विदेशियों के लिये हुआ करते है। यह उत्तर था उस महान् युग-प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द जी का जो उन्होंने एक बार एक पंजाबी भक्त को उनसे उनके समस्त ग्रन्थों का उर्दू में अनुवाद करने की आज्ञा मांगते समय दिया था। यह एक झलक है महर्षि जी के हृदय में आर्य भाषा (हिन्दी) के लिये अगाध प्रेम की। स्थान-स्थान पर उनके पत्रों, लेखों, भाषणों से आर्य भाषा और गोरक्षा के प्रति उनके मन में तड़प का दिग्दर्शन होता है, कुछ उद्धरण इस प्रकार से हैं —

♦ महाराज कुमार के संस्कार सब वेदोक्त कराइयेगा। 25 वर्ष तक ब्रह्मचारी रख के प्रथम देवनागरी भाषा और पुनः संस्कृत विद्या जिसमें सतानत आर्ष ग्रन्थ हैं जिनके पढ़ने में परिश्रम और समय कम होवे और महा लाभ हो। इन दोनों को पढ़ें।

(जोधपुर नरेश महाराज जसवन्तसिंह जी को लिखे पत्र से)

◆ गो रक्षार्थ सही और आर्य भाषा को राज्यकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयास कीजिये। (14 अगस्त, सन् 1882 को ला. कालीचरण रामचरण को लिखे पत्र से)

◆ पत्र को देखते ही देवनागरी जानने वाला एक मुन्शी रख लें जिससे काम ठीक से हो .... वेद भाष्य के लिफाफों पर रजिस्टर के अनुसार ग्राहकों का पता किसी देवनागरी जानने वाले से लिखवा लिया करें। (श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा जी 7-10-1878 को लिखे पत्र से)

◆ जब तक एक भाषा, एक धर्म और एक सुख-दुःख न माना जायेगा। तब तक देश का पूर्ण हित सिद्ध नहीं हो सकता।

◆ जब पाँच-पाँच वर्ष के लड़का-लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। (सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास)

◆ इससे विदित है कि तुम्हारी पाठशाला में अलिफ-बे और कैट बैट का भरमार है जो कि आर्यसमाजों को विशेष कर्त्तव्य नहीं। (श्रीयुत लाला कालीचरण रामचरण को 25 अप्रैल सन् 1883 को लिखे पत्र से)

◆ आप लोगों की पाठशाला में आर्य भाषा और संस्कृत का प्रचार बहुत कम और अन्य भाषा उर्दू, फारसी अधिक पढ़ाई जाती है।...... यह हजार मुद्रा का व्यय संस्कृत की ओर से निष्फल होता भासता है ......बहुत काल से आर्यावर्त्त में संस्कृत का अभाव हो रहा है—वरन् संस्कृत रूपी मातृभाषा की जगह अंग्रेजी लोगों की मातृभाषा हो चली है......इस (अंग्रेजी) की वृद्धि में हम तुम को आवश्यकता नहीं दीखती।

(सेठ निर्भयराम को दिनांक 23 मई सन् 1881 को अजमेर से लिखे पत्र से)

◆ उन दिनों आर्यभाषा के प्रचारार्थ एक कमीशन नियत हुआ था। ऋषिवर आर्यभाषा को राज्यकार्य में प्रवृत्त कराना चाहते थे, अतः वे आर्य भाषा और गोरक्षा के लिये एक मेमोरियल भिजवाने का प्रबन्ध कर रहे थे। इस सम्बन्ध में 14 अगस्त सन् 1882 ई. को लाला कालीचरण रामचरण को उदयपुर से लिखे एक पत्र को स्वामी जी ने लिखा—गो रक्षार्थ कितनी सही हो चुकी, इसका उत्तर लिखना इस समय (आर्य

भाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ जो मेमोरियल छपे हैं, सो शीघ्र भेजना और आप लोग भी जहाँ तक हो सके गोरक्षार्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिये।......आपको उचित है कि मध्यदेश में सर्वत्र पत्र भेजकर बनारस आदि स्थानों से और जहाँ-जहाँ परिचय हो, सब नगर व ग्रामों से मेमोरियल भिजवाइये। यह काम एक के करने का नहीं और अवसर चूके वह अवसर (फिर) आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की एक नींव पड़ जायेगी।

♦ युगनिर्माता महर्षि दयानन्द जी ने तथा उनकी आर्यसमाज ने आर्य हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को सर्वोत्कृष्ट मानकर ही राष्ट्र की वास्तविक उन्नति और आपसी प्रेम, संगठन और एकता के लिये महान् कार्य किये। बड़े-बड़े साहित्यकारों ने स्वामी जी के प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हुए कहा है –

श्री वृज रत्न जी बी.ए.,एल.एल.बी. द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य से इतिहास से.........स्वामी दयानन्द जी ने हिन्दी ही में उपदेश देकर तथा अपने ग्रन्थ तैयार कर शुद्ध हिन्दी का प्रचार किया।

– पं. विश्वनाथ जी शास्त्री व्याकरणतीर्थ के अनुसार स्वामी जी राष्ट्रीयता के परम उपासक थे। अपनी मातृ-भाषा गुजराती होते हुए भी उन्होंने हिन्दी की सेवा की।

– मिश्र बन्धुओं ने अपने ग्रन्थ मिश्र बन्धु विनोद में–दयानन्द-काल लिखकर उनके द्वारा की गई सेवाओं के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया है।

– प्रसिद्ध साहित्यकार एवं समालोचक स्वर्गीय आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने अपने विख्यात ग्रन्थ हिन्दी साहित्य का इतिहास में निष्पक्ष उद्‌गार प्रकट किये हैं–पैगम्बरों एकेश्वरवाद की ओर नवशिक्षित लोगों को खिंचते देख स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक एकेश्वरवाद को लेकर खड़े हुए और सम्वत् 1900 से उन्होंने अनेक नगरों में घूम-घूम कर व्याख्यान देना आरम्भ किया।

स्वामी जी ने अपना **सत्यार्थप्रकाश** तो हिन्दी या आर्यभाषा में प्रकाशित ही किया, वेदों के भाष्य भी संस्कृत और हिन्दी दोनों में किये। स्वामी जी के अनुयायी हिन्दी को आर्यभाषा कहते थे। स्वामी जी ने सम्वत् 1932 में **आर्यसमाज की स्थापना** की ओर सब आर्य समाजियों के लिये हिन्दी या आर्य-भाषा का पढ़ना आवश्यक ठहराया। युक्त प्रान्त और पंजाब में आर्यसमाज के प्रभाव से हिन्दी गद्य का प्रचार बड़ी तेजी से हुआ। पंजाबी बोली में लिखित साहित्य न होने से और मुसलमानों के बहुत अधिक सम्पर्क से पंजाब वालों की लिखने, पढ़ने की भाषा उर्दू हो रही थी। आज तो पंजाब में हिन्दी की जो चर्चा सुनाई देती है, उन्हीं की बदौलत है।

◆ महर्षि जी सम्वत् 1929 (सन् 1873 के आरम्भ में) कलकत्ता गये थे। महर्षि जी का राष्ट्र भाषा तथा स्वराज्य का प्रभाव कितना स्पष्ट एवं प्रबल था, इसकी प्रेरणा की झलक अहिन्दी भाषी बंगाल प्रान्त के दो महान् भारत पुत्रों के लेखों से भी मिलती है। प्रान्तीयता एवं स्वार्थता में रत वर्तमान राजनीतिक नेताओं और राज्याधिकारियों के प्रेरणार्थ मूल बंगला लेखों के कुछ गद्यांशों का हिन्दी अनुवाद सहित देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ –

– धार्मिक सुधारक एवं ब्रह्मसमाजी नेता श्री केशवचन्द्र सेन ने सन् 1875 में (बंगला सम्वत् 1280–चैत्र 5 को) समाचार-पत्र द्वारा अपना सन्देश देते हुए कहा था–**यदि भारतवर्ष एकता न हय, तबे ताहार उपाय कि ? समस्त भारतवर्षे एक भाषा व्यवहार कराइ उपाय। एखुन जतोगुलि भाषा भारते प्रचलित आच्छे, ताहार मध्ये हिन्दी भाषा प्राय सर्वत्र ह प्रचलित। एइ हिन्दी भाषा के यदि भारत वर्षेर एकमात्र भाषा करा जाय, तब अनायासे शीघ्र सम्पन्न हइते पारे।**

किन्तु राजार सहाय न पाइले कखनो इ सम्पन्न हइबे ना। एखुन इंग्रेज जाति आमादर राजा! तांहार जे इ प्रस्तावे सम्मत हइबेन, ताहार विश्वास करा जाय ना! भारत बासीदेर मध्य अनैक्य था–कबेना, ताहार परस्पर एक–हृदय हइबे, इहा मने करिया हयतो इंग्रेजर मने भय हइवे। तांहार मने करिया थाकेन जे, भारतवासी देर मध्ये

अनैक्य न थाकिले ब्रिटिश साम्राज्य स्थिर थाकि बे ना।

भारतवर्ष मध्ये जे सकल बड़े-बड़े राजा आछेन, ताहार मनोयोग करिले, एक कार्यटी आरम्भ करिते पारेन। जेमन एक भाषा करिते चेष्टा करा कर्त्तव्य, तेमनि उच्चारण के-ओ एक रूप करिते चेष्टा करा कर्त्तव्य। भाषा एक न हइले एकता हइते पारे ना।......... हिन्दी अनुवाद यदि भारतवर्ष में एकता नहीं है तो इसका क्या उपाय हो? समस्त भारतवर्ष में एक भाषा-व्यवहार ही इसका उपाय है। इस समय भारतवर्ष में जितनी भी भाषाएँ प्रचलित हैं इन सब के बीच में हिन्दी भाषा प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। इसी भाषा को यदि भारत की एकमात्र भाषा कर दिया जाय तभी आसानी से शीघ्र ही एकता की समस्या सम्पन्न हो सकती है।

किन्तु यदि राजा की सहायता न हो तो कभी भी यह समस्या नहीं सुलझ सकेगी। इस समय अंग्रेज जाति हमारा राजा है, वह इस प्रस्ताव से सहमत हो जायेंगे ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता। भारतवासियों में अनेकता है—यदि कभी इनका हृदय एक हो जाये, इनका एक मन एक हो जाये तो अंग्रेज के मन में डर पैदा हो जाये। वे सोचते हैं भारतवर्ष में अनेकता न हो तो ब्रिटिश साम्राज्य स्थिर नहीं रह सकता।

भारतवर्ष में जितने बड़े-बड़े राजा हैं वे यदि प्रयत्नशील हों तो वे यह कार्य आरम्भ कर सकते हैं। जैसे एक भाषा करने के लिये चेष्टा करना कर्त्तव्य है वैसे ही बोलचाल में एकरूपता करना कर्त्तव्य है। जब तक देश में एक भाषा नहीं होती तब तक एकता सम्भव नहीं। (कितना स्पष्ट प्रभाव है?)

— प्रसिद्ध उपन्यासकार, विचारक एवं **वन्दे मातरम्** गीत के लेखक देशभक्त बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी उच्चकोटि के साहित्यिक पत्र **बंग दर्शन** सन् 1878 इस्वी (वंगीय संवत् 1284) को अपना सन्देश देते हुए कहते हैं--इंग्रेजी जाहा भाषा हउक, किन्तु हिन्दी शिक्षा ना करिले कोनो क्रमे-इ चलिबेना। हिन्दी भाषाय पुस्तकओं वक्तृता द्वारा भारतेर अधिकांश स्थानेर मंगल साधन करिबेन, केवल बङ्गला ओ इंग्रेजी चर्चाय हइबेना भारतेर अधिवासी संख्यार सहित तुलना करिले, बांगला ओ इंग्रेजी कय

जनलोक बलिते ओ बुझिते पारेन ? बङ्गलार न्याय जे हिन्दिर उन्नति हइतेछे ना इहा देशेर दुर्भायेर विषय। हिन्दि भाषार साहाय्य भारतवर्षेर विभिन्न प्रदेशेर मध्ये जाहारा ऐक्य बन्धन संस्थापन करिते पारि बेन, तांहार-इ-प्रकृत भारत-बन्धु नामे अभिहित हइबार योग्य।

सक्ले चेष्टा करुन, यत्न करुन, जतोदिन परे-इ-हउक, मनोरथ पूर्ण हइबे। हिन्दी अनुवाद—अंग्रेजी भाषा द्वारा कुछ भी होता हो किन्तु हिन्दी भाषा की शिक्षा के बिना देश की कोई समस्या नहीं सुलझेगी। हिन्दी पुस्तकों से, हिन्दी माध्यम से प्रायः सभी स्थानों पर व्याख्यानों और बोलचाल द्वारा ही देश के अन्दर मंगल होगा। केवल बंगला और अंग्रेजी की चर्चा से कुछ नहीं होगा। यदि भारत की जनसंख्या से तुलना की जाये तो भारत में कितने व्यक्ति होंगे जो बंगला और अंग्रेजी बोल और समझ सकते हैं ? यह देश का दुर्भाग्य है कि बंगला की जितनी उन्नति हो रही है, हिन्दी की उतनी नहीं हो रही। जो विद्वान् हिन्दी भाषा के सहयोग से भारतवर्ष में विभिन्न प्रदेशों के अन्दर एकता लायेगा वही वास्तव में **भारतबन्धु** कहलाने के योग्य है। सब चेष्टा करें, सब प्रयत्न करें जितना समय भी लगे हमारा मनोरथ पूरा होगा।" (कितनी स्पष्ट और अमिट छाप है?)

गोरक्षार्थ किये गये महर्षि जी के महान् उपकारों को राष्ट्र कभी भी भुला नहीं सकता। प्रतिदिन सहस्रों पशुओं का वध होता देखकर स्वामी जी तड़प उठे और गो आदि मूक किन्तु उपकारी जीवों का सच्चा प्रतिनिधि बन, उन्होंने **गोकरुणानिधि** पुस्तक की रचना की। महारानी विक्टोरिया को मेमोरियल देने के लिये लाखों हस्ताक्षर करवाये। वे सच्चे अर्थों में **गोपालक** थे। उनके ग्रन्थों और पत्रों के कुछ और उद्धरणों पर मनन कीजिये—

♦ हे राजपुरुषो! तुम लोगों को **चाहिये कि जिन बैल आदि** पशुओं के प्रभाव से खेती आदि काम, जिन **गौ आदि** से दूध, **घी आदि** उत्तम पदार्थ होते हैं कि जिनके दूध आदि **से सब प्रजा की** रक्षा होती है, उनको कभी मत मारो और जो जन इन उपकारक **पशुओं को** मारे उनका राजा आदि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें। **(यजुर्वेद भाष्य 13-49)**

♦ एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख, पचहत्तर सहस्र, छः सौ मनुष्यों को सुख पहुँचता है वैसे पशुओं को न मारें, मारने दें। **(सत्यार्थप्रकाश, दशम समुल्लास)**

♦ इन (गाय आदि) पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाला जानियेगा। देखो! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे तभी आर्यावर्त्त वा अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी वर्तते थे। क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे। **(सत्यार्थप्रकाश, दशम समुल्लास)**

♦ जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपायी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है। **(सत्यार्थप्रकाश, दशम समुल्लास)**

♦ क्या जिन-जिन प्रयोजनों के लिये परमात्मा ने जो-जो पदार्थ बनाये हैं, उन-उन से वे-वे प्रयोजन न लेकर उनको प्रथम ही विनष्ट कर देना सत्पुरुषों के विचार में बुरा कर्म नहीं है? पक्षपात छोड़कर देखिये गाय आदि पशु कृषि आदि कर्मों से सब संसार को असंख्य सुख होते हैं वा नहीं ? **(गो करुणानिधि)**

♦ जंगल में चर के अपने बच्चे और स्वामी की रक्षा के लिये तन, मन लगावें। जिनका सर्वस्व राजा और प्रजा आदि मनुष्यों के सुख के लिये है इत्यादि शुभ गुणयुक्त सुखकारक पशुओं के गले छुरों से काट कर जो अपना पेट भर सब संसार की हानि करते हैं, क्या संसार में उनसे भी अधिक कोई विश्वासघाती, अनुपकार दुःख देने वाले और पापीजन होंगे ? **(गो करुणानिधि)**

♦ गो आदि पशुओं का नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है। क्योंकि जब पशु शून्य होते हैं तब दूध आदि पदार्थ और खेती आदि कार्यों की भी घटती जाती है। **(गो करुणानिधि)**

♦ हे मांसाहारियो ! तुम लोगों को अब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं। **(गो करुणानिधि)**

♦ मुझे यह जानकर भी प्रसन्नता हुई कि जयपुर में गोवध निषेध का प्रबन्ध हो गया है। मेरी प्रबल इच्छा थी कि यह कार्य किसी राजा द्वारा होता। आपने यह अच्छी योजना बनाई है कि आपके राजा की ओर से गौओं (बैलों वा भैंसों) का निर्यात नहीं होगा। आपकी योजना के साथ एक अच्छी-सी योजना और जोड़ देना चाहता हूँ जो इस प्रकार है—राज्य की सब गायों आदि की गणना करा दी जाये। प्रत्येक नया पशु जो पैदा हो (या मरे) उसकी सूचना इस कार्य के लिये नियुक्त कर्मचारी के पास भेज दी जाये। यह गणना प्रति 6 मास, 7 मास बाद होनी चाहिये? ......गौओं का मामला बड़ी तेजी से सफलता से आगे बढ़ रहा है।........हम न केवल देशी राज्यों में ही गोवध बन्द कराना चाहते हैं, अपितु इस कार्य के लिये पार्लियामेंट से भी निवेदन कराना चाहते हैं। इस कार्य के लिये हम दो करोड़ आदमियों के हस्ताक्षर चाहते हैं।

(बम्बई से 8 अप्रैल सन् 1882 का श्री नन्दकिशोर, जयपुर को लिखे पत्र से)

♦ प्रथम तो श्रीमान महाशयों ने करुणापूर्वक 40800 चालीस हजार, आठ सौ पुरुषों की ओर से हस्ताक्षर कर पत्र मम्बापुरी में हमारे पास भेजा था, परन्तु अब इस विषय में श्रीमानों के प्रबन्ध से कितनी सही हुई है?......... **जो आप सदृश महाशय इन महोपकारक माता-पिता के समान संसार के रक्षक करुणापात्र गायादि पशुओं के दुःख निवारणार्थ प्रयत्न किया है वा करते आते हैं, वह अवश्य सफल होकर इस आर्यावर्त्त की औषधि रूप होकर सब आर्यों के हृदय की अग्नि को शान्त करेगा।**

(उदयपुर से श्रावण शुक्ला 1 सम्वत् 1939 (15 अगस्त 1882) को राजा श्रीयुत नाहरसिंह को लिखे पत्र से)

♦ विदित हो कि गोरक्षार्थ हस्ताक्षर पत्र के सहित आपका कुशल पत्र पहुँचा। पत्रस्थ समाचार के अवलोकन करने से अत्यन्त हर्ष हुआ। यह आपने सर्वोपकारक धन्यवादार्थ पुरुषार्थ किया, परमात्मा दिन-प्रतिदिन ऐसे ही कर्मों के सिद्ध करने में उत्साही करे। आशा है आर्य भाषा के प्रचारार्थ भी आप स्वपुरुषार्थ की प्रकटता करेंगे।

(श्रीयुत पण्डित गोपाल राव जी को 26 अगस्त सन् 1882 को लिखे पत्र से)

यह तो दिग्दर्शनमात्र है। महर्षि जी के जीवन की एक-एक घटना उनका एक-एक उपदेश हीरे की भाँति जाज्वल्यमान और जगमगा रहा है। उनके अमर ग्रन्थों, पत्र-व्यवहार, जीवन घटनाओं सभी का श्रद्धापूर्वक अध्ययन और मनन अत्यावश्यक है।

आज समय की सबसे बड़ी मांग है, वर्तमान गम्भीर परिस्थितियों की बहुत बड़ी चेतावनी है—चैलेंज है कि आज सभी देशवासी विशेषकर सामाजिक एवं राजनीतिक तथा राज्याधिकारी आपसी मतभेद, प्रान्तीयता, निजी स्वार्थता को त्यागकर राष्ट्रपितामह जगत् गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती के उपदेशों पर और आदेशों पर चलकर आपसी प्रेम सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता लाकर देश की अखण्ड स्वतन्त्रता को सुरक्षित कर राष्ट्र में चहुंमुखी उन्नति एवं प्रगति लाकर **भारत** को संसार के प्राचीन **गुरुपद** पर आसीन करें अन्यथा कुछ हाथ न लगेगा।

नेताओं की
महर्षि दयानन्द को श्रद्धांजलियाँ

♦ महर्षि दयानन्द हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में और श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत अधिक पड़ा। **(महात्मा गाँधी)**

♦ महर्षि दयानन्द के जीवन में सत्य की खोज दीख पड़ती है, इसलिये केवल आर्य समाजियों के लिये वरन् सारी दुनिया के लिए वे पूज्य थे। **(माता कस्तूबा गाँधी)**

♦ मेरे हृदय में महर्षि दयानन्द जी के प्रति अगाध श्रद्धा है। उन्होंने आँधी के वेग के समान जनता वा राष्ट्र को हिला दिया, सोये हुए लोगों को जगा दिया और समाज में फैली हुई कुरीतियों तथा पाखण्ड को दूर किया। व्यक्ति के मोक्ष प्राप्ति के स्थान पर समाज को मोक्षपद दिलाना महर्षि दयानन्द ही काम था। **(भारत रत्न पं. जवाहरलाल नेहरू–प्रधानमन्त्री)**

♦ महर्षि दयानन्द मेरे गुरु हैं, मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है। वह मेरे धर्म के पिता हैं और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है, इन दोनों की गोद में, मैं पला। मुझे इस बात का गर्व है कि गुरु ने मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना, बोलना और कर्त्तव्य पालन करना सिखाया तथा मेरी माता ने मुझे एक संस्था में बद्ध होकर नियम तथा अनुशासन का पाठ पढ़ाया। **(भारत केसरी लाला लाजपतराय)**

जगत् गुरु महर्षि दयानन्द जी के प्रति कवियों के उद्गार

♦ धन्यञ्च प्राज्ञमूर्धन्यं दयानन्द दयाधनम्।
स्वामिनं तमहं वन्दे वारं वारञ्च सादरम्।।

— **आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी**

♦ भूल में पड़े, भूल को समझ, भूल न पाते।
देख-देख कर दुःखी जात, दुख देख न पाते।।
कर्म-भूमि पर था न कर्म का बहता सोता।
धर्म-धर्म कह धर्म-मर्म का ज्ञान न होता।।
उस काल अलौकिक लोक में हमें अलौकिक बल दिया।
आ दयानन्द आलोक ने अलोकित भूतल किया।।

— **कवि सम्राट् पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय**

♦ जो न हटा मुख फेर, बढ़ा जीवनभर आगे।
जिसका साहस हेर, विघ्न-भय संङ्कट भागे।।
सबल सत्य की हार, अनृत की जीत न होगी।
ऐसे प्रबल विचार, सहित जो विचरा योगी।।
जस दयानन्द मुनिराज का, प्रकृत पाठ जनता पढ़े।
प्रभु शङ्कर आर्य समाज का, वैदिक बल गौरव बढ़े।।

— **महाकवि पं. नाथूराम शर्मा 'शङ्कर'**

♦ अतुल शान्त, निवृत्ति परायण, परम भक्त करुणा निधान के,
उत्कट देश भक्त, युग त्राता, दयाननद हैं धनी ज्ञान के।
कर्मवीर, निर्भीक सिंह सम, किंचित् भूखे नही मान के,
शिश्नोदरता के कट्टर रिपु, मूर्तरूप हैं स्वाभिमान के।।

— पौराणिक पण्डित ब्रह्मानन्द "बन्धु"

♦ दशा जिसने भारत की बिगड़ी सुधारी।
किये एक जिसने शिखा-सूत्र-धारी।।
धरमवीर, सेवाव्रती, क्रान्तिकारी।
बनाये थे जिसने, बहुत नर व नारी।।
किया जिसने फिर जागृति का सवेरा।
वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा।।

— कविरत्न पं. प्रकाशचन्द्र

♦ दयानन्द की ज्योति जगत में,
जगी, जग रही और जगेगी।
अभिनव भारत का निर्माता,
जाति, जननि का भाग्य-विधाता,
प्राणी-मात्र का संकट-त्राता,
फहरी धर्म्म-ध्वजा फहरेगी —
जगी जग रही और जगेगी।

— पं. हरिशङ्कर शर्मा 'कविरत्न'

♦ व्रती, ब्रह्मचारी, समुद्धार-कारी,
सदा शंकरी, वेद विद्या-प्रचारी।
महा-वंचकी-वृत्ति-धाती, कुठारी,
नमस्ते दयानन्द ! आनन्दकारी।।

-- कविवर पं. चेतराम शर्मा

♦ वैसद् गुरु सद् गुण की खान, अद्वितीय वैदिक विद्वान्।
नमस्कार है बारम्बार, दयानन्द मुनिराज उदार।।

— **राजकुमार रणञ्जयसिंह, अमेठी**

♦ राग-रोष, दुःख-दोष-कोष का, किया आशु संहार।
परम पुण्य तव प्रेम मन्त्र का, सब में हुआ प्रचार।।
विश्वबन्धु श्री दयानन्द ने, किया परम उपकार।
श्री हरि ऋषिवर के चरणों में, बार-बार जय-जयकार।।
भारत नहीं किन्तु ऋषिवर, तव ऋणी सकल संसार।।

— **कविवर श्री हरि**

जीवन - परिचय

पं. हरिदेव आर्य, एम. ए. विद्यावाचस्पति

(सितम्बर 1918-दिसम्बर 2006)

श्री पं. हरिदेव आर्य की जन्म-स्थली जामपुर (डेरागाजीखान) पंजाब । आपकी प्रारम्भिक शिक्षा लाहौर में हुई। तत्पश्चात् एम. कॉम. की शिक्षा सहारनपुर (उ.प्र.) में रेलवे विभाग में कार्य करते-करते ही प्राप्त की।

बाल्यावस्था में ही कृष्ण जन्माष्टमी के पर्व के उपलक्ष्य में आपका आर्यसमाज कसौली में जाना हुआ। वहीं सत्संग में आपके मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि आप दृढ़ आर्य बने। तभी से आप छोटी-छोटी कविताएं एवं लेख (निबन्ध) लिखते थे, जो आर्यसमाज की पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे।

भारत के विभाजन के पश्चात् फरवरी 1948 ई. में आपका विवाह सौभाग्यवती श्रीमती सुशीला देवी से वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। आपने भी आपकी कर्त्तव्यपरायणता से प्रेरित होकर कन्धे से कन्धा मिलाकर वैदिक -धर्म और आर्यसमाज का बीड़ा उठाया। आज भी पूर्णरुपेण आप आर्यसमाज के लिए समर्पित हैं।

सन् 1952 में आर्य समाज, मण्डी, शाहदरा के सदस्य बने और प्रारम्भ में ही आपको आर्य कुमार सभा का भार सौंपा गया। आपने नगर आर्य समाज, शाहदरा की स्थापना की और वहाँ के छोटे-छोटे आर्य बच्चों को सन्ध्या, हवन, व्यायाम व योग सिखाना, यही आपके जीवन का ध्येय बन गया। आपने आर्य कुमार सभा व आर्य कुमारी सभा के कैम्प (कड़कड़डूमा के पास) लगाये। वैदिक शिक्षा को पढ़ाते हुए यजुर्वेद के मन्त्रों को कण्ठस्थ करवाया तथा बच्चों को अनुशासित करते हुए ऐसी शिक्षा दी जिससे वह स्वयं व अपने परिवार को सच्चाई व उन्नति की राह पर ले जा सकें । परिणामस्वरुप आपके द्वारा शिक्षित आर्य कुमारों व कुमारियों ने सच्चे इन्सान और डॉक्टर, इन्जीनियर, आई. ए. एस. आदि बन कर अपने-अपने क्षेत्र में योग्यता प्राप्त की । शिक्षा वही जो स्वयं प्रारम्भ है। इसलिये सिनेमा घर की नौकरी छोड़ना, आजीवन चमड़े के जूते न पहनना व विशेष प्रकार का कुर्ता-पायजामा तथा धोती पहनना इत्यादि इसी बात की पहचान है । आपने पूरा जीवन आर्यसमाज की सेवा में समर्पित किया। प्रधान-पद पर रहते हुए भी आपने सदा स्वयं को आर्य समाज का सेवक समझा । आपसे मिलने वाले भी आपको प्रधान जी के नाम से पुकारते रहे हैं।

सन् 1957-58 के हिन्दी रक्षा आन्दोलन में आप बाहर रह कर काम करते रहे, अपने परिवार को सत्याग्रह में भेजा जो 6 महीने तक जेल में रहा। सहारनपुर में आर्यसमाज, खलासी लाइन की स्थापना की व अनेक वर्षों तक प्रत्येक रविवार को शाहदरा आकर आर्यसमाज व दिल्ली आर्य कुमार परिषद् व प्रान्तीय आर्य कुमार परिषद् का संचालन

किया। सन् 1982 के आर्य महा सम्मेलन में सक्रिय भाग लिया व इसे शानदार सफल बनाया। 1983 में, ऋषि निर्वाण शताब्दी में भी प्रमुख भूमिका निभाई।

जामपुरी सभा के लिए अनेक वर्षों तक जामपुरी पत्रिका का सम्पादन करके आप सभा के संरक्षक बने। जब पीतमपुरा (दिल्ली) में रहने लगे तो वहाँ भी आर्यसमाज सी. पी. ब्लॉक की स्थापना की। आर्य नगर हाउसिंग सोसायटी में किये गये कार्य आपकी क्षमता व नेतृत्व के जीते जागते उदाहरण हैं। सन् 2001 में पटपड़ गंज में हुए आर्य महासम्मेलन में केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् ने आर्य श्रेष्ठी सम्मान से सम्मानित किया तथा 2003 में प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी जी के साथ मंचासीन होने का अवसर मिला।

आप यज्ञप्रेमी तथा स्वाध्यायशील रहे। आप सदा निष्ठावान् तथा कर्त्तव्य परायण व्यक्ति थे। अर्थ शुचिता और सदाचार के आप एक आदर्श व्यक्ति रहे। आपने अनेक पुस्तकों का सम्पादन, संकलन तथा भाष्य करके आर्य जगत में हलचल मचा दी। प्रायः सभी वैदिक साहित्य मधुर-प्रकाशन, दिल्ली में उपलब्ध हैं। प्रमुख वैदिक साहित्य इस प्रकार है:-

1. जगमगाते हीरे (3 संस्करण)
2. वैदिक नित्य कर्म विधि (16 संस्करण)
3. वैदिक सत्संग पद्धति (8 संस्करण)
4. सदाचार की ओर
5. ईश-वन्दना
6. ईश्वर की ओर
7. वैदिक मनुस्मृति
8. श्रद्धानन्द उवाच
9. पुष्पांजलि (दो भागों में)
10. मधुर भजन पुष्पांजलि
11. प्रभात् गीत
12. वेदांजलि
13. योगेश्वर श्रीकृष्ण
14. राष्ट्रपितामह महर्षि दयानन्द

परम्-पिता की न्याय-व्यवस्था के अनुसार आर्य समाज का यह चमकता सितारा व कर्मठ कार्यकर्त्ता 24 दिसम्बर, 2006 को पञ्चतत्व में विलीन हो गया।

आपके परिवार में दो पुत्र श्री यशोवीर आर्य तथा श्री धर्मवीर आर्य एवं दो पुत्रियां श्रीमती मदालसा तथा श्रीमती सुमेधा हैं। सभी परिवार के सदस्य आर्य, मधुरभाषी तथा सदाचारी हैं। अपने पूर्वजों के अनुगामी तथा अनुव्रती हैं।

-राजपाल सिंह शास्त्री

पं० हरिदेव आर्य की वंशावलि-परिचय

श्रीमान् लोक नाथ जी (पिता)
श्रीमती कौशल्या देवी जी (माता)

श्री रामलाल जी (भाई)
श्री मनोहर लाल जी (भाई)
श्री सुन्दर दास जी (भाई)

श्रीमती धर्म देवी जी (बहन)
श्रीमती मंघो देवी जी (बहन)
श्रीमती ठाकरी देवी जी (बहन)
श्रीमती राम देवी जी (बहन)

श्री हरिदेव आर्य (स्वयं)
श्रीमती सुशीला आर्या (धर्मपत्नी)

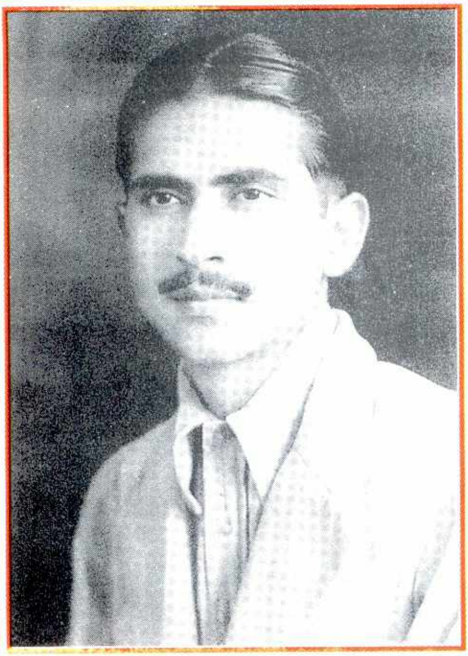
1 श्री यशोवीर आर्य (ज्येष्ठ पुत्र)
श्रीमती सुदेश वीर (पुत्र वधु)
श्रीमती श्रुति ऋषी (पौत्री)
श्री राजीव ऋषी (पौत्री वर)
कु. गरिमा वीर (पौत्री)

2. श्रीमती मदालसा खुराना (पुत्री)
डा. जवाहर लाल खुराना (दामाद)
डा. आशीष खुराना (दौत्र)
डा. अभिषेक खुराना (दौत्र)

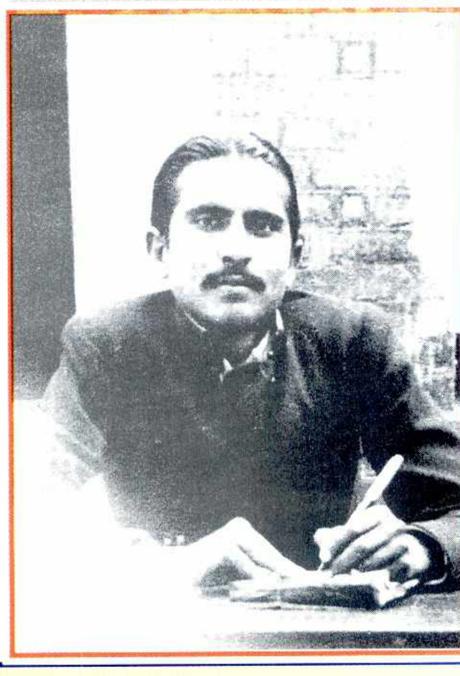
3. ग्रुप कै. धर्मवीर आर्य (पुत्र)
श्रीमती अर्चना वीर (पुत्र वधु)
श्रीमती श्रद्धा तिवारी (पौत्री)
फ्ला. लै. आयुष तिवारी (पौत्री वर)
कु. समृद्धि वीर (पौत्री)

4. श्रीमती सुमेधा (पुत्री)
श्री विनोद कुमार (दामाद)
श्री सौरभ कुमार (पौत्र)
कु. विभूति (पौत्री)

जीवन काल की कुछ झलकियाँ



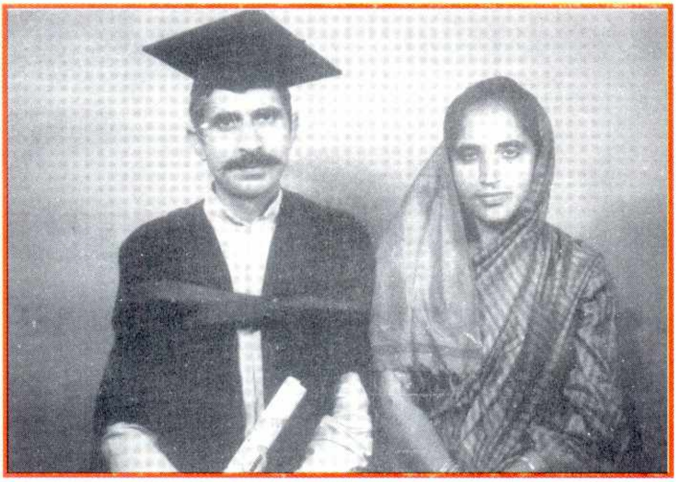
श्री हरिदेव आर्य
युवावस्था में



रेलवे सेवा के दौरान आर्य
जगत के लिये लेख व
कवितायें लिखते हुए
'वीर' के रूप में



पंजाब हिन्दी सत्याग्रह (1957-58) में धर्मपत्नी व पुत्र को जेल भेजते हुए



एम. काम डिगरी लेने के समये धर्मपत्नी के साथ



कड़कड़डूमा इलाके में आयु कुमार सभा के कैम्प में झण्डा लगाते हुए



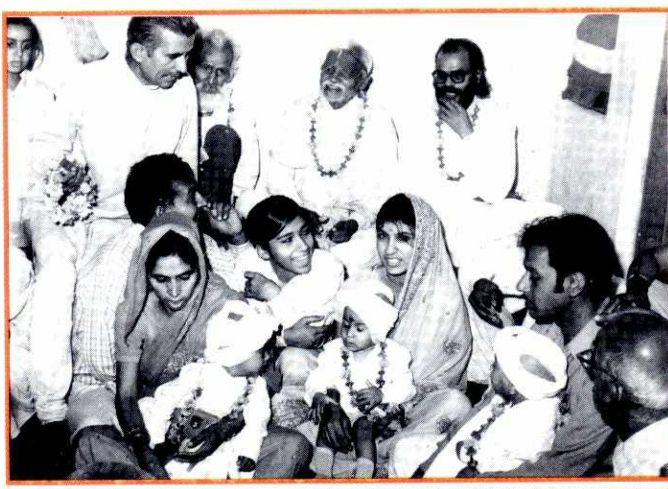
कैम्प में भोजन करते हुए आर्य कुमार



आर्य कुमार सभा शाहदरा के बैण्ड का एक दृश्य



आर्य कुमार सुधार सभा का नेतृत्व करते हुए



नगर आर्य समाज के आर्य परिवारों के सम्मिलित मुण्डन पर
पं. सुरेन्द्र शर्मा व श्री जगदीश विद्यार्थी के साथ
(जिन्होंने उन्हें हनुमान की उपाधि दी थी)



प. देवीदयाल जी के साथ प्रान्तीय आर्य कुमार परिषद् के सामूहिक चित्र में



नगर आर्य समाज के उत्सव पर परिवार के साथ



जामपुर वेलफेयर एसोसियेशन के वार्षिक सम्मेलन में
उन्होंने 8 वर्षो तक ''जामपुरी पत्रिका'' का सफल सम्पादन किया।



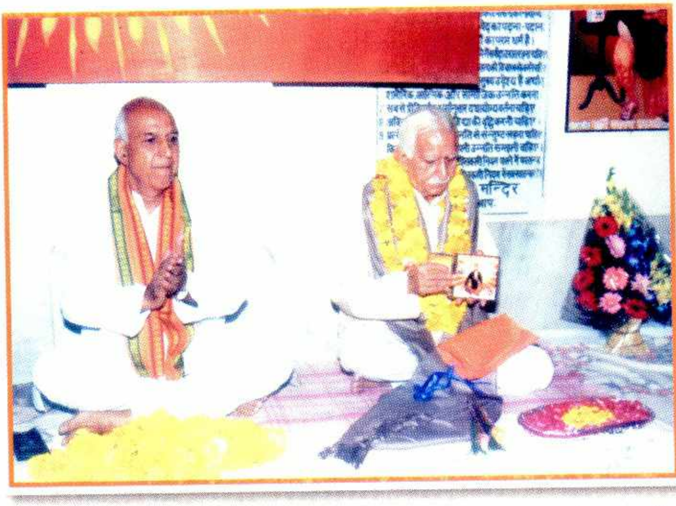
आर्य समाज वेद मन्दिर पीतम पुरा, दिल्ली में
प्रधान श्री हरिदेव आर्य अपने सहयोगियों के साथ



'आर्य नगर' सोसायटी में आर्य समाज मन्दिर की आधार शिला नवसम्वत् एवं
आर्य समाज स्थपना दिवस शनिवार 4 अप्रैल 1992 को रखी गई।
प्रधान श्री हरिदेव आर्य के साथ उप-प्रधान श्री सुभाष चन्द्र गन्डोत्रा व
मन्त्री डा. रूप किशोर शास्त्री इस उपलक्ष्य में लगी 'शिला' के साथ



निर्माणाधीन 'आर्य नगर' सोसायटी के प्रधान के रूप में उद्बोधन करते हुए।



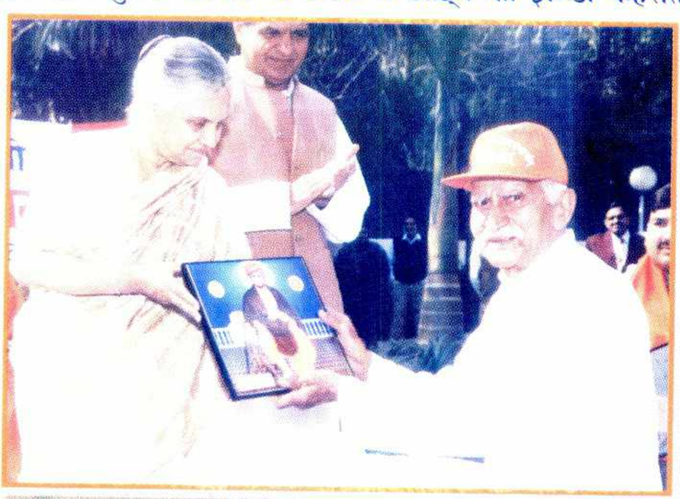
आर्य समाज 'आर्य नगर' में श्री निर्मल कुमार जी के भजनों की कैसट व सी. डी. का विमोचन करते हुए।



आर्य समाज सूर्य निकेतन के उत्सव का एक दृश्य।



क्रेन्द्रय आर्य युवक परिषद के उत्सव में ओ३म का झण्डा फहराते हुए।



माननीय मुख्य मन्त्री श्रीमती शीला दीक्षित से स्वामी जी का चित्र
भेंट लेते हुए। माननीय स्वास्थ्य मन्त्री डा० योगानन्द शास्त्री उत्साहवर्धन करते हुए।



माननीय प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के साथ महर्षि दयानन्द के जन्मदिन को 'राष्ट्रीय सदभावना दिवस' के रूप में मानते हुए, स्वामी दीक्षानन्द जी, आचार्य अखिलेश्वर जी व श्री अनिल आर्य भी साथ में।



क्रेन्द्रीय आर्य युवक परिषद द्वारा अयोजित उत्सव में
माननीय श्री मदनलाल खुराना जी द्वारा 'आर्य श्रेष्ठी' एवार्ड प्राप्त करते हुए।



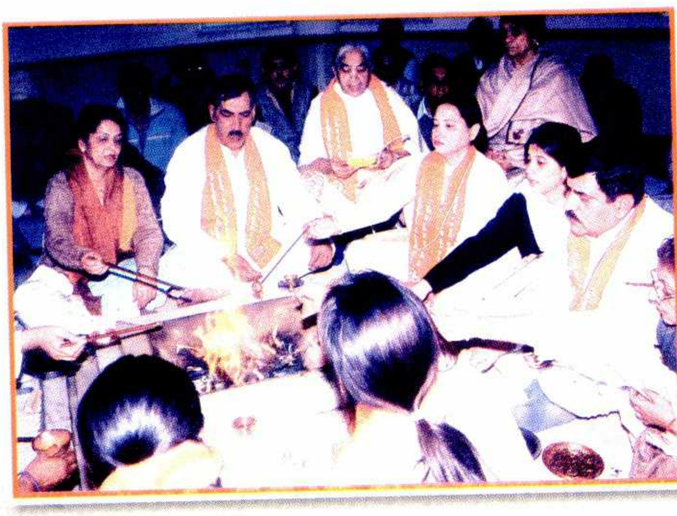
पौत्री श्रुति के विवाह उत्सव में (11 अक्तूबर 2005)



'शहीद भगत सिंह जन्म शताब्दी' पर कमानी आडिटोरियम में स्वामी सुमेधानन्द जी सरस्वती (चम्बा) स्वागत करते हुए।



अन्त्येष्टि संस्कार 24 दिसम्बर, 2006



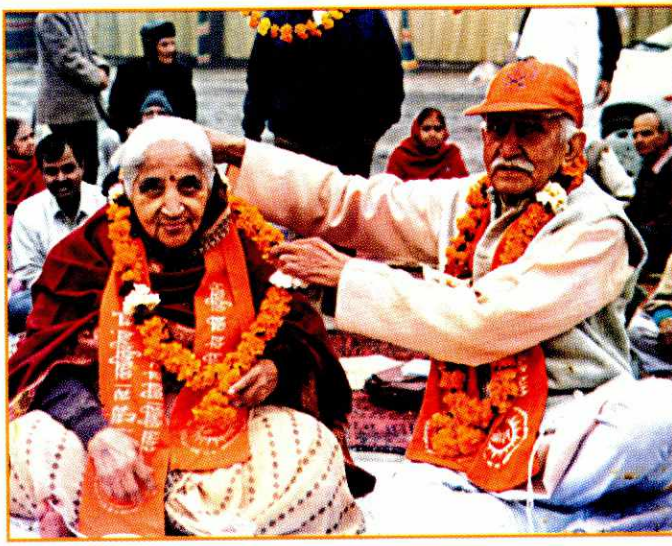
श्रद्धान्जलि सभा से पूर्व यज्ञ में परिवार दि. 27 दिसम्बर 2006



श्रद्धान्जलि सभा दि. 27 दिसम्बर 2006



'माता सुशीला हरिदेव आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट' द्वारा वैदिक विद्वान् पं. राजपाल शास्त्री जी का सम्मान करते हुए प. प्रेम पाल शास्त्री, डा. अशोक चौहान, श्री दर्शन अग्निहोत्री व श्री अनिल आर्य।



श्रीमती सुशीला जी आर्या

यद्यपि आप बाल्यावस्था से परम्परागत तथा रुढ़िगत संस्कारों में पली, बड़ी हुई, सौभाग्य से आपका विवाह संस्कार श्री हरिदेव जी आर्य से वैदिक विधि द्वारा सम्पन्न हुआ। विवाह–संस्कार के पश्चात् आप भी महर्षि दयानन्द के विचारों को पढ़कर तथा मनन और चिन्तन के पश्चात् आप भी आर्य बन गई। तभी से आप दोनों पति–पत्नी रूप में होकर आर्य समाज के कार्यों सें बढ़–चढ़ कर भाग लेने लग गईं।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् की घोषणा को मनाते हुए सर्वप्रथम अपनी सन्तति को ही वैदिक विचारों में ढालना प्रारम्भ किया । तत्पश्चात् दोनों पुत्रों और दोनों पुत्रियों को शुद्ध आर्य बनाया। परिणामस्वरुप शनैः–शनैः आर्य युवक तथा आर्य युवतियों में वैदिक संस्कार डालने प्रारम्भ कर दिये।

अब आपने अपने पतिदेव के नाम से धर्मार्थ ट्रस्ट बनाया है जिसका नाम–**माता सुशीला व हरिदेव आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट** रखा है। जिसके अर्न्तगत वैदिक साहित्य तथा वैदिक धर्म का प्रसार को आगे बढ़ाया जाएगा।

परमपिता परमात्मा आपको सद्बुद्धि, स्वास्थ्य तथा दीर्घायु प्रदान करे। यही शुभकामना है।

उज्ज्वल भविष्य की कामना से

आपका शुभेच्छु

२३.१२.२००७ **राजपाल सिंह शास्त्री**



पं0 हरिदेव जी आर्य

आप यज्ञप्रेमी और स्वाध्यायशील व्यक्ति थे। तभी आपने अनेक पुस्तकों का सम्पादन, संकलन तथा भाष्य करके आर्यजगत् में हलचल मचा दी, जिनमें प्रमुख साहित्य निम्नलिखित हैं।

वैदिक नित्य कर्म विधि, सदाचार की ओर, वेदांजलि, श्रद्धानन्द उवाच, वैदिक मनुस्मृति, ईशवन्दना, योगेश्वर श्रीकृष्ण, ईश्वर की ओर, वैदिक सत्संग पद्धति आदि।

-मधुर प्रकाश शास्त्री